CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Nalagarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अनेक Titles

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

C. W. P. Sharma
28/2/18.

ॐतत्सत्।

हिन्दीरत्नाकर।

(त्रैमासिकपत्र)

भाग १	जनवरी से दिसम्बर सन् १९१४	संख्या १ से ४

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल प्रधानकार्य्यालय
काशी से
श्रीविश्वनाथअन्नपूर्णादानभण्डार
द्वारा प्रकाशित।

लखनऊ
सुपरिंटेंडेंट बाबू मनोहरलाल भार्गव, बी. ए., के प्रबन्ध से
मुंशी नवलकिशोर सी. आई. ई., के छापेखाने में छपा.
सन् १९१४ ई०

All Rights Reserved.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हिन्दी रत्नाकर की नियमावली।

(१) हिन्दी भाषा की पुष्टि, अध्यात्मज्ञान का विस्तार, और सनातनधर्म्मशास्त्रों के प्रचार के अभिप्राय से हिन्दीरत्नाकर नामक ग्रन्थावली त्रैमासिकरूप से नियमित प्रकाशित होगी।

(२) प्रति वर्ष का अग्रिम मूल्य केवल एक रुपया लिया जायगा। और चौबीस फ़र्में प्रति वर्ष दिये जायँगे।

(३) प्रति वर्ष की प्रथम संख्या वी. पी. भेजकर अग्रिम वार्षिक मूल्य वसूल किया जायगा।

(४) इस ग्रन्थावली में अमूल्य ग्रन्थसमूह खण्डाकाररूप से प्रकाशित होंगे इसकारण ग्राहकों को प्रथम वर्ष सेही ग्राहक होना सुविधाजनक होगा। नियमित ग्राहक होने के लिये निम्नलिखित पते पर पत्र भेजें।

स्वामी दयानन्द,
श्री भारतधर्म्म महामण्डल प्रधान कार्य्यालय
हरिधाम जगतुगंज-बनारस (छावनी)

INDIRA GANDHI
NATIONAL CENTRE
FOR THE ARTS
ACC NO.......................
DATE.......................

विज्ञापन।

हिन्दीरत्नाकर में कौन कौन अमूल्य ग्रन्थ प्रारम्भ में निकलेंगे उनकी सूचना प्रस्तावना में की गई है। उक्त ग्रन्थों में से जो जो ग्रन्थ छपकर पूर्ण होजायँगे उनके स्थान पर अन्य ऐसेही बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित होने के लिये चुने जायँगे। इस समय इस प्रथम भाग में श्रीमद्भगवद्गीता का हिन्दी भाष्य, मन्त्रयोगसंहिता और दैवीमीमांसा (मध्य मीमांसा) का हिन्दीभाष्य यही तीन ग्रन्थ प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है।

इस ग्रन्थावली के साथही साथ श्रीसत्यार्थविवेक भी प्रकाशित होरहा है, इस बृहत् ग्रन्थरत्न में सनातन धर्म्म के सब अङ्ग उपाङ्ग तथा सनातनधर्म्म के जानने योग्य सब विषय रहेंगे। यह ग्रन्थ प्रायः १००० अथवा १२०० पृष्ठ का होगा। आठ समुल्लासों में से प्रथम समुल्लास छपचुका है। यह ग्रन्थ खण्डाकार से भी मिल सकेगा। पहले से ग्राहक होने से दो रुपये में मिलेगा।

मैनेजर निगमागम बुकडिपो,
श्रीमहामण्डल कार्य्यालय हरिधाम जगत्गंज
वनारस (छावनी)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रस्तावना ।

मनुष्यसमाज में जिस प्रकार शिल्पोन्नति से उसके बहिर्जगत् की उन्नति जानी जाती है उसी प्रकार दर्शनशास्त्र की उन्नति से उसके अन्तर्जगत् की उन्नति समझी जाती है । जिस मनुष्यसमाज ने जब जितना शिल्पोन्नति साधन किया है वह मनुष्यसमाज उस समय उतनेही परिमाण से बहिर्जगत् सम्बन्धीय उन्नति के पथ में अग्रसर हुआ है । शिल्प की उन्नति के साथही साथ मनुष्य समाज में पदार्थविज्ञान (सायेन्स) की उन्नति हुआ करती हैं । पदार्थविज्ञान कभी भी सर्वोच्चस्थान अधिकार नहीं करता है तथापि उसकी उन्नति के परिमाण के अनुसारही मनुष्यसमाज में बहिर्जगत् की उन्नति का परिमाण अनुमित हुआ करता है ।

सूक्ष्मातिसूक्ष्म अतीन्द्रिय अन्तर्राज्य के अर्थ दर्शनशास्त्रही एकमात्र अवलम्बन है । स्थूलराज्य से अतीत अत्यन्त वैचित्र्यपूर्ण सूक्ष्मराज्यरूप अनन्त पारावार के लिये दर्शनशास्त्रही ध्रुवतारा स्वरूप है । सूक्ष्मराज्य में प्रवेश करने की इच्छा करनेवाला साधक केवल दर्शनशास्त्रों के साहाय्य से ही अन्तर्राज्य (सूक्ष्मराज्य) में प्रवेश करने में समर्थ होता है । जिस प्रकार स्थूलनेत्रविहीन व्यक्ति स्थूलजगत् का कुछ भी नहीं देखसक्ता, उसी प्रकार दर्शनशास्त्र को न जानने वाला व्यक्ति भी सूक्ष्मजगत् के विषयों को कुछ भी नहीं समझ सक्ता । अतएव इन सब बातों से यह जानना चाहियें कि जो शास्त्र सूक्ष्मजगत् का वास्तविक तत्त्व समझा देवे उसीको दर्शनशास्त्र कहते हैं ।

पृथिवी का इतिहास पढ़ने से जाना गया है कि जब जो मनुष्यजाति आध्यात्मिक जगत् में अग्रसर हुई है तबही उनमें दर्शनशास्त्र की आलोचना प्रारम्भ हुई है । वैदिक धर्मावलम्बी मनुष्यसमाज में जिस प्रकार दर्शनशास्त्रों की उन्नति हुई है, पृथिवी की अन्य किसी जाति में भी उस प्रकार उन्नति नहीं हुई है । सनातनधर्मावलम्बी मुनिगण ने योगसाधन के द्वारा अन्तःकरण की शुद्धि प्राप्त करके तत्पश्चात् अन्तर्जगत् में प्रवेश करने की चेष्टा की थी । पूज्यपाद महर्षिगण ने पहिले तप और योग की सहायता से अन्तर्दृष्टि प्राप्त करके तब जगत् के कल्याणार्थ सूत्र बनाकर पृथक् पृथक् दर्शनशास्त्र प्रकाशित किये थे । उन्होंने पहिले अन्तर्राज्य में आधिपत्य स्थापन करके पीछे जिज्ञासुगण के अर्थ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसके द्वार को उघाड़ने के अभिप्राय से वैदिक दर्शनशास्त्र प्रणयन किये हैं। परन्तु पृथिवी की अन्यान्य शिक्षित जातियों में उस प्रकार होने की सम्भावना न होने से उन्होंने दूर से अन्तर्राज्य का यत्किञ्चित् आभास पाकर उस विषय के वास्तविक सत्य को अन्वेषण करने की चेष्टा की है। पृथिवी की सकल शिक्षित जातियें जिस प्रकार बहिर्जगत् का आश्रय ग्रहण करके सूक्ष्मजगत् में प्रवेश किया करती हैं, पूज्यपाद महर्षिगण ने वैसा न करके प्रथम अन्तर्जगत् का विस्तारित ज्ञान प्राप्त करके तब सर्वसाधारण के कल्याणार्थ उसको बहिर्जगत् में प्रकाशित करने का यत्न किया था। इसी कारण वैदिक दर्शनशास्त्र सात अङ्गों में विभक्त होकर सम्पूर्ण हुए हैं। परन्तु पृथिवी की अन्यान्य शिक्षित जातियों के दर्शनशास्त्र वैसे न होकर वैचित्र्यमय और असम्पूर्ण रहे हैं।

सृष्टितत्त्व की पर्य्यालोचना करने से सहजही जाना जासक्ता है कि त्रिगुणमयी प्रकृति के राज्यमें सर्वत्रही तीन तीन विभाग विद्यमान हैं, यथाः—वात पित्त और कफरूपिणी शरीररक्षा की त्रिविधशक्ति, मनुष्य की त्रिविध प्रकृति, त्रिविध कर्म इत्यादि। इसी प्रकार सात रीति के भावों के अवलम्बन से सृष्टिराज्य के सप्तधातु, सप्तवर्ण, सप्तदिवस, सप्तऊर्द्ध्वलोक, सप्तअधोलोक, सप्तरज, सप्त अज्ञानभूमि, सप्तज्ञानभूमि, इत्यादि सप्तविध विभाग सकल स्थानों में ही परिलक्षित होते हैं। उक्तरीति से सप्तज्ञानभूमियों को अतिक्रम करके क्रमशः परमपद लाभ करने के अर्थ जिस वैदिक दर्शन विज्ञान का आविर्भाव हुआ है वह भी इन सप्त ज्ञानभूमियों के अनुसार ही सप्तभागों में विभक्त है। इन सात दर्शनों में से दो पदार्थवाददर्शन, दो सांख्यप्रवचन दर्शन, और तीन मीमांसा दर्शन हैं। आधुनिक पुस्तकों में जो षड्दर्शन नाम देखा जाता है वह केवल जैन और बौद्धों के अनुकरण से प्रचारित हुआ है, क्योंकि उनके दर्शनशास्त्र षड्दर्शन नाम से अभिहित होते थे इसी से नास्तिकदर्शन के अनुकरण से वैदिक षड्दर्शन नाम प्रचारित हुआ था। किसी भी आर्षग्रन्थ में षड्दर्शन शब्द नहीं देखने में आता है। विशेषतः बहुत शताब्दियों से मीमांसादर्शन के सब सिद्धान्त ग्रन्थ लुप्त होजाने से मध्यमीमांसा दर्शन का एक भी सिद्धान्तग्रन्थ मिलता नहीं था। इन सब कारणों से ही अज्ञानमूलक षड्दर्शन शब्द हमारे साहित्य में क्रमशः प्रचलित हो पड़ा है। वास्तव में न्याय और वैशेषिक ये दोनों पदार्थवाद के दर्शन, योग और सांख्य ये दोनों सांख्य प्रवचन दर्शन और वेदोक्त कर्म उपासना एवं ज्ञान इन काण्डत्रयों के अनुसार कर्ममीमांसा, दैवीमीमांसा (भक्तिमीमांसा) तथा ब्रह्ममीमांसा ये तीनों मीमांसादर्शन, इस प्रकार सप्त दर्शन स्वतःसिद्ध हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दर्शन ग्रन्थों के अभाव और दार्शनिक शिक्षा के लोप होजाने से सनातन धर्म्म की वर्त्तमान दुर्गति हुई है। आजकल स्वधर्म्म में अविश्वास, परधर्म्म ग्रहण में इच्छा, सदाचारवर्जन, पूज्यपाद महर्षिगण के आदेशों का उपहास, वेद और पुराणों पर अश्रद्धा, साम्प्रदायिक विरोध, अलौकिक अन्तर्राज्य पर अविश्वास, परलोक के भय का राहित्य, देवदेवी और ऋषि पितरादि के अस्तित्व में सन्देह, कर्म्मकाण्ड पर अनास्था, साधु और ब्राह्मणों पर अभक्ति, वर्णाश्रमधर्म्म की उपेक्षा, जगत् को पवित्र करनेवाले आर्य्य नारियों के धर्म्म के मूलोच्छेद में प्रवृत्ति, जप ध्यानादि साधनमार्ग पर अरुचि इत्यादि आर्य्यत्व नाशकारी जो प्रबलदोष उत्पन्न हुए हैं यह केवल वैदिकदर्शनों की शिक्षा के अभाव से ही हुए हैं इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है।

न्यायदर्शन की शिक्षा इस समय सम्पूर्णरूप से नहीं होती है। पहिले की तरह इस समय प्राचीन न्याय की वास्तविक शिक्षापद्धति नहीं है, यह कहने से भी अत्युक्ति नहीं होगी। इस समय प्राचीन न्याय के स्थान में नवीन न्याय का ही अधिक प्रचार देखाजाता है।

वशेषिकदर्शन के उपयोगी आर्ष भाष्य के अभाव होने से उसकी चर्चा एक प्रकार उठही गई है ऐसा कहने से भी चल सक्ता है।

योग दर्शन पहिले तो कठिन शास्त्र है, और उसके साथ अन्तर्जगत् का अतिघनिष्ठ सम्बन्ध होने से उसकी यथार्थरूप से अध्ययन और अध्यापन की प्रथा एकबारही उठगई है। क्योंकि योगदर्शन के आचार्य्य को योगी होना आवश्यक है। किन्तु इस समय उस प्रकार के वास्तविक योगी के अभाव होने से ही इस दर्शन की यथार्थ शिक्षा का अभाव होपड़ा है।

सांख्यदर्शन की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है। इस समय कोई उसको आधुनिक दर्शन कहते हैं, कोई उसको प्रक्षिप्त विषयपूर्ण कहकर घृणा करते हैं, और कोई कोई नास्तिक दर्शन कहकर उसका परिचय देते हैं। कई हज़ार वर्षों से उसका आर्ष भाष्य न मिलने से और आजकल जो उसका भाष्य मिलता है वह जैनधर्म्मावलम्बी आचार्य्य का बनाया हुआ होने से ही इस प्रकार की विशृङ्खलता का कारण उपस्थित हुआ है। विज्ञानभिक्षु जैनाचार्य्य वा बौद्धाचार्य्य थे इसमें अब कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि उन्होंने जिस भाव से सांख्यदर्शन को अपने भाष्य द्वारा प्रतिपादन करने की चेष्टा की है उससे स्पष्टही ज्ञात होता

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है कि वे सनातन धर्म्मावलम्बी नहीं थे। उन्होंने अप्रासङ्गिक रीति से वैदिकी हिंसा की निन्दा, लौकिक और अलौकिक प्रत्यक्ष विज्ञान को परिवर्तन करते हुए ईश्वर की सिद्धि के सम्बन्ध में अनुमेत सिद्धान्त का प्रतिपादन, शास्त्रोक्त देवतादि का खण्डन आदि जो किया है उसको पढ़ने सेही निरपेक्ष दार्शनिक व्यक्तिमात्र ही एक वाक्य से स्वीकार करेंगे कि वे सनातनधर्म्म के विरोधी अन्य किसी सम्प्रदाय के आचार्य्य थे। अबतक सांख्यदर्शन पर जो सब टीकाएँ प्रकाशित हुई हैं उनके बनानेवालों ने जैनाचार्य्य विज्ञानभिक्षु के मत का अनुसरण करके ही वे सब बनाई हैं।

दर्शनशास्त्र का वास्तविक प्रचार करना होगा तो प्राचीन न्याय दर्शन का अधिक प्रचार, और ऋषियों के अभिप्रायानुसार भाष्य के साथ वैशेषिक दर्शन का प्रचार विशेष आवश्यक है। श्रीभगवान् व्यासकृत भाष्य को अवलम्बन करके योगी महापुरुषगण के द्वारा प्रणीत विस्तृत भाष्य के साथ योग दर्शन भी प्रचारित होना आवश्यक है। सांख्यदर्शन का भाष्य सूत्रकार के अभिप्राय के अनुसार तत्त्वज्ञानी व्यक्तियों की सहायता से नूतनपद्धति से प्रणीत होकर प्रचारित होना आवश्यक है।

तीनों मीमांसा दर्शनों में घोर विप्लव उपस्थित हुआ है। पूज्यपाद महर्षि जैमिनिकृत कर्म्म मीमांसादर्शन अतिवृहत् होने पर भी वह असम्पूर्ण और एकदेशी है। जैमिनिदर्शन में केवल वैदिक कर्म्मकाण्ड का विज्ञान सुन्दररूप से वर्णित है किन्तु वर्त्तमान समय में वैदिक यागयज्ञ का प्रचार प्रायः लुप्त हो जाने से इस दर्शनशास्त्र द्वारा इस समय किसी प्रकार के हमारे विशेष उपकार के सिद्ध होने की सम्भावना नहीं है।

धर्म्म क्या है, साधारण और विशेषधर्म्म में भेद क्या है, वर्णधर्म्म क्या है, आश्रम धर्म्म क्या है, पुरुषधर्म्म क्या है, नारी धर्म्म क्या है, जन्मान्तर वाद का विज्ञान क्या है, परलोक में गति किस प्रकार होती है, संसार का रहस्य क्या है, षोडश संस्कार का विज्ञान क्या है, संस्कार शुद्धिद्वारा किस प्रकार क्रिया शुद्ध होती है, उद्भिज्जादि योनियों से मनुष्य योनि में किस प्रकार जीव क्रमशः प्रवेश करता है, मनुष्य पुण्यकर्म्म करके किस प्रकार अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त होता है, कर्म के भेद कितने हैं, क्रियाशुद्धि द्वारा मनुष्य किस प्रकार मुक्त होता है इत्यादि कर्म्म मीमांसा का प्रतिपाद्य विषय है। इस प्रकार का मीमांसा दर्शन का सिद्धान्त ग्रन्थ बहुत काल से लुप्त अवस्था में

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

था। इस समय श्रीभारतधर्म्ममहामण्डल के नेताओं के यत्न से एक विस्तृत सूत्रग्रन्थ प्राप्त हुआ है और उसका भाष्य भी संस्कृत भाषा में बनरहा है।

कर्म्ममीमांसा यदिच लुप्त हुई थी तथापि उसका एक बृहत् ग्रन्थ पाया जाता था किन्तु दैवीमीमांसा (मध्यमीमांसा वा भक्तिमीमांसा) का कोई ग्रन्थ भी नहीं मिलता था। इस समय उसका भी एक सिद्धान्तभूत सूत्रग्रन्थ मिला है और उसका संस्कृत भाष्य प्रणीत होकर प्रकाशित होगया है। भक्ति किसको कहते हैं, भक्ति के भेद कितने प्रकार हैं, उपासना के द्वारा मुक्ति किस प्रकार सम्भव है, भगवान् का आनन्दमय स्वरूप क्या है, भगवान् के ब्रह्म ईश और विराट् इन तीन रूपों में भेद क्या है, भक्ति के प्रधान प्रधान आचार्य्य ऋषिगण के स्वतन्त्र स्वतन्त्र मत क्या है, सृष्टि का विस्तृत रहस्य क्या है, अध्यात्म सृष्टि क्या है, आधिदैव सृष्टि क्या है, अधिभूत सृष्टि क्या है, ऋषि किसको कहते हैं, देवदेवी किसको कहते हैं, पितृ किसको कहते हैं, उनके साथ जगत् का सम्बन्ध क्या है, अवतार कैसे होते हैं, अवतार कितने प्रकार के हैं, भक्ति के द्वारा मुक्ति किस प्रकार होसक्ती है, चार प्रकार के योग का लक्षण और उपासना का भेद कितने प्रकार का है, उपासना और भक्ति के आश्रय से साधक किस प्रकार मुक्तिलाभ करने में समर्थ होता है कर्म्म मीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, दैवीमीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है, एवं ब्रह्ममीमांसा का अन्तिम लक्ष्य क्या है इत्यादि विषय इस दर्शन शास्त्र में वर्णित है। इसी दर्शनशास्त्र के लोप होने से योग और उपासना इन दोनों की एकता सिद्ध करने के विषय में उन्नत ज्ञानियों को भी विमोहित होते हुए देखा गया है।

सप्तम ज्ञानभूमिका अन्तिम दर्शन ब्रह्ममीमांसा है इसको वेदान्त कहाजाता है। उसका अति उत्तम भाष्य श्रीभगवान् शङ्कराचार्य्य प्रणीत पाया जाता है। किन्तु इतने दिनतक दैवीमीमांसा दर्शन के लुप्त अवस्था में रहने से और उपासक सम्प्रदायों के अद्वैतवाद को द्वैतवाद में परिणत करने की चेष्टा करने से वेदान्त विचार में अनेक असुविधाएँ उत्पन्न हुई हैं। यदि मध्यमीमांसा बीच के समय में विलुप्त न होती तो द्वैत और अद्वैतवाद का विरोध कदापि संघटित न होता।

न्यायदर्शन का जो आर्ष भाष्य मिलता है वह अतीव विस्तृत है ही। वैशेषिकदर्शन का विस्तृत भाष्य संस्कृत में प्रणीत होरहा है। योगदर्शन का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विस्तृत भाष्य पूर्व लिखित रीति का प्रणीत होगया है और उसका कुछ अंश विद्यारत्नाकर नामक संस्कृत मासिकपत्र में प्रकाशित हुआ है।

सांख्यदर्शन का संस्कृत भाष्य भी पूज्यपाद महर्षिगण के मत के अनुसार प्रणीत होगया है और उसका कुछ अंश उक्त पत्र में प्रकाशित भी हुआ है, इस भाष्य को पढ़कर शिक्षित मण्डली विस्मित हुई है, और सांख्यदर्शन आस्तिक दर्शन है यह सबही एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं। कर्ममीमांसा दर्शन सभाष्य संस्कृत भाषा में शीघ्र प्रकाशित होगा। दैवीमीमांसा दर्शन अर्थात् मध्यमीमांसा दर्शन का भाष्य सम्पूर्ण होगया है और उसके तीनपाद सभाष्य संस्कृत भाषा में उक्त पत्रिका में प्रकाशित होचुके हैं। वेदान्तदर्शन का समन्वय भाष्य भी संस्कृत में प्रकाशित होगा। प्राचीन आर्य्यगण का मत ठीक ठीक उद्धृत करके और अन्यान्य निम्नज्ञानभूमियों के अधिकारों को उन समस्त दर्शनोक्त ज्ञानभूमियों के ठीक ठीक विज्ञान के अनुसार प्रतिपादन करके इस वेदान्त भाष्य को सर्वाङ्गसुन्दर करने की चेष्टा कीजायगी। इन सात प्रकार के दर्शन शास्त्रों का ठीक ठीक प्रचार और इनकी यथाविधि शिक्षा देने के अर्थ इन सातों दर्शनों के संस्कृत भाष्य प्रणयन का कार्य्य बहुत कुछ अग्रसर हो गया है। इस समय हिन्दीभाषा के पाठकवर्ग के अर्थ यह सब दर्शन ग्रन्थ सरल हिन्दीभाषा में विस्तृत भाष्य के साथ क्रमशः प्रकाशित करने की पूरी इच्छा है। और साथही साथ श्रीमद्भगवद्गीता का एक अति उत्तम भाष्य (जिस में श्रीगीताजी के अध्यात्म अधिदैव अधिभूत ये तीनों स्वरूप दिखाये जायँ) प्रकाशित करना निश्चय किया गया है।

हमारे सुहृद्गण में से अनेकों ने परामर्श दिया है कि ज्ञानभूमि के क्रम के अनुसार पहले न्याय और वैशेषिकादि दर्शन प्रकाशित होना उचित है। किन्तु हमने विचार करके देखा है कि जब इससे पहले हो से ये दर्शन हिन्दी में सामान्य रूप से प्रचारित हैं तब इनका विस्तृत भाष्य के साथ प्रचार यद्यपि आवश्यक है तथापि पहलेही इनको प्रकाश करने से पाठकों का तादृश चित्त विनोदन नहीं होगा, दूसरे दैवीमीमांसा आदि दर्शन ग्रन्थों का प्रचार जब बिलकुल ही नहीं था तो इनके पहिले प्रचारित होने से पाठकों की आनन्द, उत्साह और बहुत कुछ अभिज्ञता वृद्धि की विशेष सम्भावना है, तीसरे वैदिक दर्शनशास्त्र प्रचार के कार्य्य में जब हम प्रवृत्त हुए हैं तो प्रथम ही भगवद्भक्ति प्रकाशक दैवीमीमांसा दर्शन और भगवद्गीतारूपी भगवद्वाक्य का प्रकाश अत्यन्त कल्याणकर है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त सात वैदिकदर्शन ग्रन्थ प्रकाश के साथ साथ हम योग के क्रिया सिद्धांश सम्बन्धीय पांच ग्रन्थ हिन्दी अनुवाद के साथ प्रकाशित करने की इच्छा करते हैं। उपासना का मूलभित्तिरूप योग का क्रिया सिद्धांश चारभागों में विभक्त है। यथाः— मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग और राजयोग। इन चारों प्रणालियों के अलग अलग अङ्ग, अलग अलग ध्यान और अलग अलग अधिकार निर्णीत हैं। नाम और रूप के अवलम्बन से जो साधन प्रणाली निर्णीत हुई है उसको मन्त्रयोग कहते हैं। मन्त्रयोग सोलह अङ्गों में विभक्त है और उसके ध्यान को स्थूलध्यान कहते हैं।

स्थूलशरीर की सहायता से चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उस को हठयोग कहते हैं। हठयोग सात अङ्गों में विभक्त है और हठयोग का ध्यान ज्योतिर्ध्यान नाम से अभिहित है।

लययोग और भी अधिक उन्नत अवस्था का साधन है। जगत् प्रसविनी कुल कुण्डलिनी शक्ति जो सकल शरीर में ही विद्यमान है उसी शक्ति को गुरूपदेशानुसार जाग्रत् करके और सहस्रार में लय करके चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उसको लययोग कहते हैं। लययोग नौ अङ्गों में विभक्त है और उसके ध्यान का नाम विन्दु ध्यान है।

योगप्रणालियों में सर्वश्रेष्ठ योगप्रणाली का नाम राजयोग है। उल्लिखित त्रिविध साधक को उन्नत अवस्था में राजयोग की सहायता लेनी ही पड़ती है। केवल विचारशक्ति द्वारा चित्तवृत्ति निरोध करने की जो प्रणाली है उसको राजयोग कहते हैं। राजयोग सोलह अङ्गों में विभक्त है और उसका ध्यान ब्रह्मध्यान नाम से अभिहित होता है। उपर्युक्त तीन योगप्रणालियों की समाधि को सविकल्प समाधि कहते हैं किन्तु राजयोग की समाधिही निर्विकल्प समाधि है।

उपर्युक्त चार प्रकार की योगप्रणाली के अङ्ग और उपाङ्ग वेद, आर्षसंहिता, पुराण एवं तन्त्रादि में अनेक स्थानों में ही देख पड़ते हैं। किन्तु अधिकारानुसार इन प्रत्येक की क्रियाएँ अलग अलग और यथाक्रम किसी ग्रन्थ में भी नहीं मिलती हैं। प्राचीन समय में गुरु और शिष्य सम्प्रदाय का अधिकार उन्नत था इसीसे ही इस प्रकार साधन विभाग की आवश्यकता नहीं थी, किन्तु वर्त्तमान समय में इन चारों साधन प्रणालियों के अलग अलग सिद्धान्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थ न मिलने से योगी और उपासक सम्प्रदाया में घोर विप्लव उपस्थित हुआ है।

हमने मन्त्रयोगसंहिता, हठयागसंहिता, लययोगसंहिता और राजयोगसंहिता यह चार सिद्धान्त ग्रन्थ पाये हैं। इनमें प्रत्येक साधन प्रणाली विस्तृत और सुन्दररूप से वर्णित है। इन चारों ग्रन्थों के अतिरिक्त गुरुलोग इनके अवलम्बन से शिष्यों को किस प्रकार शिक्षा देवें इस विषय का योगप्रवेशिका नामक और एक ग्रन्थ है। उक्त पांचों ग्रन्थ प्रायः विद्यारत्नाकर नामक संस्कृत मासिक पत्र में प्रकाशित किये गये हैं। क्रमशः हिन्दी अनुवाद के साथ उनको प्रकाशित करेंगे। इस समय प्रथम में मन्त्रयोगसंहिता का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करना प्रारम्भ किया गया।

उपर्युक्त सात दर्शनग्रन्थ और पांच योगग्रन्थ हिन्दीभाषा में प्रकाशित होने से हिन्दी के दार्शनिक जगत् की उन्नति के विषय में एक असाधारण परिवर्त्तन संसाधित होगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

वेद का ज्ञानकाण्ड उपनिषद् हैं उनके सार भूत अर्थ को लेकर श्रीभगवान् के पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया है उस सर्व्व शास्त्रमयी गीता का एक वृहत्भाषाभाष्य प्रणयन किया जा रहा है जिसको क्रमशः प्रकाशित करने का विचार है। आज तक इस प्रकार का आध्यात्मिक व्याख्यापूर्ण भाष्य प्रकाशित नहीं हुआ था।

इस प्रकार दर्शनों में से दैवीमीमांसादर्शन का हिन्दी संस्करण, योगसंहिताओं में से मंत्रयोगसंहिता और श्रीमद्भगवद्गीता का भाषाभाष्य प्रकाशित करना पहिले पहिल प्रारम्भ किया गया है। आशा है हिन्दी भाषोन्नति प्रेमी, दार्शनिक ज्ञानेच्छुक, योगसाधनाभ्यासी तथा योग के क्रियासिद्ध अंश के जिज्ञासु और सर्वोत्कृष्ट गीतोपनिषद् के ज्ञान को समझने की इच्छा करनेवाले धार्मिक व्यक्ति इस सत्पुरुषार्थ को देखकर प्रसन्न होंगे और इनसे लाभ उठाकर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं परमात्मने नमः ।

दैवीमीमांसा दर्शन ।

भाष्यभूमिका ।

"जो नित्य निर्विकार एक और विभु हैं, जो चेतन और जड़ एवं पुरुष और शक्ति हैं, जो निर्गुण होने पर भी सगुण हैं, जो एक होकर भी कारण से कार्य्यब्रह्मपर्य्यन्त बहु भावों से प्रतीयमान हैं, जो जगत् की कल्याण-कामना से आद्य और अद्वितीयरूप परित्याग करके नाना शरीर और रूपों से वर्त्तमान हैं उसी रस के सागर सच्चिदानन्दमय परब्रह्म परमात्मा को भक्तिभाव से वारम्वार प्रणाम करता हूँ। जो रसरूप होकर रसभाव-परिप्लुत और भक्तियुक्त मुमुक्षुगण को निरन्तर परमानन्द सागर में उन्मज्जित और निमज्जित करते करते अन्त में स्वस्वरूप करदेते हैं उनको पुनः पुनः अभिवादन करता हूँ"। * "त्रिकालदर्शी परमकरुणामय सर्वज्ञ और मानवों के आदिगुरु महर्षि अङ्गिरा,

---

* यो नित्यो निर्विकारः प्रकृतिरपि पुमान्
निर्गुणः सद्गुणश्च ।
भात्येकोऽनेकरूपो विविधतनुतया
कारणात् कार्य्यतश्च ॥
आनन्दाब्धौ रसात्मा निरवधि रसिकान्
भक्तियुक्तान् मुमुक्षून् ।
मग्नीकुर्य्यात्तमीशं श्रय इह परमं
भक्तिभावैकगम्यम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिनके करुणासिन्धु का बिन्दुमात्र प्राप्त होकर ही जीवगण देवदुर्लभ निःश्रेयस लाभ करने में समर्थ होते हैं उन्हींके ही श्रीपदारविन्द का ध्यान करते हुए उनके ही पदचिह्न के अनुसरणपूर्वक यथाशक्ति इस भाष्य के प्रणयन में प्रवृत्त होता हूँ"। *

"आत्मेत्येवोपासीत" "तदात्मानमेवावेत्" "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति" अर्थात् आत्मा की ही उपासना करना उचित है, आत्मा को ही ज्ञात होना उचित है क्योंकि आत्मा को जानने पर ही मृत्युभय दूर होजाता है, इन सब श्रुतिवचनसमूह की चरितार्थता सम्पादन के अर्थ सिद्धान्त कियागया है कि परस्पर सम्बन्धयुक्त वैदिक सप्त-दर्शन विज्ञान अध्यात्मराज्य में प्रवेश करनेवाले मुमुक्षुओं के अर्थ दिव्य नेत्रस्वरूप हैं।

इस स्थावरजंगमात्मक विशाल संसार में प्रथमतः जीव उच्च निम्न अगणित उद्भिज्ज पिण्डों में प्रवेश करके, पीछे स्वेदजों के अगणित पिण्डों में प्रवेश करता है। तद-नन्तर प्रकृति माता के अनुग्रह से पुनः क्रमोन्नति लाभ करताहुआ अण्डजों की अनेक योनियों को प्राप्त होता है। इस प्रकार जीव क्रमशः जरायुज योनि को प्राप्त होकर

* सतस्त्रिकालज्ञगुरोः कृपाकणम्,
भक्त्या अवाप्याङ्गिरसः कृतार्थताम् ।
भेजुर्मुहुस्तत्पदपङ्कजं स्मरन्,
विधास्यते भाष्यमिदं यथामति ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्त में मानव देह को प्राप्त होता है। किन्तु मनुष्य शरीर लाभ करके भी जीव जन्ममरणरूपी कठोर दुःख के हाथ को अतिक्रमण नहीं करसक्ता। अधिकन्तु वासनाजाल में विजडित होकर जन्ममरणरूप संसार प्रवाह में स्थायीरूप से प्रवाहित होता रहता है। केवल उपासनाद्वारा आत्मसाक्षात्कार लाभ होने से ही जीव परमानन्दरूप मुक्तिपद प्राप्त होसक्ता है। यही उल्लिखित श्रुतिसमूह की चरितार्थता है। श्रीभगवत्सान्निध्य प्राप्ति के उपाय विशेष का नाम ही उपासना है। भक्ति विज्ञान के अनुसार साधन धारणा और आत्मज्ञान के द्वारा क्रमशः परमात्मा का सान्निध्य लाभ होता है और अन्त में तत्वज्ञानी भक्त निर्वाण मुक्ति लाभ करता है। श्रीगीतोपनिषद् में स्वयं भगवान् ने आज्ञा की है कि "हे भरतश्रेष्ठ अर्जुन, सुकृती व्यक्तिगण मेरा भजन करते हैं परन्तु सुकृत के तारतम्य के अनुसार वे चार प्रकार के हैं। यथाः—आर्त्त अर्थात् रोगादिजनित दुःख से पीड़ित, जिज्ञासु अर्थात् जिनमें भगवान् के जानने की इच्छा होती है, अर्थार्थी अर्थात् परमार्थरूपी मुक्ति पद का इच्छुक एवं ज्ञानी अर्थात् आत्मज्ञानवान्। ये चार प्रकार के सुकृतिशाली व्यक्ति मुझको भजन करते हैं। उक्त चार प्रकार के भक्तों में सर्वदा मेरे में निष्ठावान् और एकमात्र मेरे में ही भक्तिविशिष्ट ज्ञानी भक्त ही श्रेष्ठ है, क्योंकि मैं ज्ञानी भक्त का अतिशय प्रिय हूँ और वह भी मेरा प्रिय है। (ज्ञानियों का देहादि में अहंबुद्धि का अभाव होने

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के कारण उनका चित्त-विक्षेप नहीं होता है, इस कारण वे ही नित्ययुक्त और अनन्य भक्त होसक्ते हैं। दूसरे नहीं होसक्ते ।) ये चार प्रकार के भक्त ही महान् हैं किन्तु ज्ञानी भक्त मेरा ही स्वरूप है, क्योंकि मदेकचित्त उस ज्ञानी भक्त ने सर्वोत्कृष्ट गति स्वरूप मुझको ही आश्रय लिया है। भक्तगण बहुत जन्मों के बाद ज्ञानवान् होकर "वासुदेव ही यह जगत् है" सर्वत्र इस प्रकार की आत्म-दृष्टि द्वारा मुझको परिज्ञात होते हैं, वैसे महात्मा दुर्लभ हैं"। * कर्म्मकाण्ड की सहायता से आधिभौतिक शुद्धि लाभ करके उपासनाकाण्डद्वारा आधिदैविक शुद्धि लाभा-नन्तर ज्ञानी भक्त परमात्मा को "ब्रह्म ही जगत् है" इस भाव से दर्शन करके उल्लिखित भगवद्वाक्य की चरितार्थता सम्पादन किया करते हैं। अपौरुषेय वेद के उपासनाकाण्ड की पुष्टि के अर्थ पूज्यपाद महर्षि अङ्गिराद्वारा इस दर्शन

* चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥
तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः सहि युक्तात्मा मामेवाऽनुत्तमां गतिम् ॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥
श्रीगीतोपनिषद् ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञान का प्रकाश हुआ था। उसके अनन्तर महर्षि शाण्डिल्य एवं भगवान् शेष आदि द्वारा भी यह दर्शन विज्ञान प्रकाशित हुआ था।

उन्नत ज्ञानसम्पन्न मनुष्य जब अन्तर्राज्य में प्रवेश करता है तब दार्शनिक नेत्रों की सहायता विना कदापि वह गम्य स्थान पर जाने में समर्थ नहीं होता है। वेद अभ्रान्त है इसी कारण वैदिक विज्ञान भी सर्वाङ्ग सम्पूर्ण और सुन्दर है एवं निर्द्दिष्ट विभागों में विभक्त है। सप्तज्ञानभूमि के अनुसार वैदिक दर्शन भी सात हैं। इन सात ज्ञानभूमियों के नाम और लक्षण पूज्यपाद महर्षिगण द्वारा इस प्रकार से उक्त हुए हैं कि "प्रथम ज्ञानभूमि का नाम ज्ञानदा, द्वितीय ज्ञानभूमि का नाम संन्यासदा, तृतीय योगदा, चतुर्थ लीलोन्मुक्ति, पञ्चम सत्यदा, षष्ठ आनन्दप्रदा और सप्तम परात्परा। मैं समस्त ज्ञातव्य विषय ज्ञात हुआ हूँ यह प्रथम भूमि का अनुभव है, परित्याज्य पदार्थसमूह को त्याग करदिया है यह द्वितीय भूमि का अनुभव है, प्राप्य शक्तियों को प्राप्त किया है यह तृतीय भूमि का अनुभव है, यह दृश्यमान समस्त जगत् माया का ही लीलाविलासमात्र है इसमें मेरी कोई भी अभिलाषा नहीं है यह चतुर्थ भूमि का अनुभव है, यह जगत् ही ब्रह्म है यह पञ्चम भूमि का अनुभव है, ब्रह्म ही जगत् है यह षष्ठभूमि का अनुभव है और मैं अद्वितीय निराकार निर्विकार सच्चिदानन्दरूप ब्रह्म हूँ यह सप्तम ज्ञानभूमि का अनुभव है। इस

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सप्तम ज्ञानभूमि को प्राप्त होकर ही ज्ञानी महात्मा ब्रह्मस्वरूप होजाता है"। *

निखिल शास्त्रों में प्रधान प्रधान सकल शास्त्रही चतुर्व्यूह द्वारा सुरक्षित हैं, उपासनाकाण्ड की मीमांसा रूपी यह दैवीमीमांसादर्शन भी उल्लिखित नियमानुसार चतुर्व्यूह द्वारा सुरक्षित है। यथा :— सृष्टि स्थिति प्रलय का स्वरूप, इन तीनों का हेतु, मुक्ति और मुक्ति का उपाय। दैवीमीमांसादर्शन के अनुसार पूर्वोक्त चतुर्व्यूह के आश्रय

---

* ज्ञानदा ज्ञानभूमेर्हि प्रथमा भूमिका मता।
संन्यासदा द्वितीया स्यात्तृतीया योगदा भवेत्॥
लीलोन्मुक्तिश्चतुर्थी वै पञ्चमी सत्यदा स्मृता।
षष्ठ्यानन्दप्रदा ज्ञेया सप्तमी च परात्परा॥
यत्किञ्चिदासीज्ज्ञातव्यं ज्ञातं सर्वं मयेति धीः।
प्रथमो भूमिकायाश्चानुभवः परिकीर्तितः॥
त्याज्यं त्यक्तं मयेत्येवं द्वितीयोऽनुभवो मतः।
प्राप्या शक्तिर्मया लब्धाऽनुभवो हि तृतीयकः॥
मायाविलसितं चैतद्दृश्यते सर्वमेव हि।
न तत्र मेऽभिलाषोऽस्ति चतुर्थोऽनुभवो मतः॥
जगद् ब्रह्मेत्यनुभवः पञ्चमः परिकीर्तितः।
ब्रह्म एव जगत् षष्ठोऽनुभवः किल कथ्यते॥
अद्वितीयं निर्विकारं सच्चिदानन्दरूपकम्।
ब्रह्माहमस्मीति मतिः सप्तमोऽनुभवो मतः॥
इमां भूमिं प्रपद्यैव ब्रह्म सारूप्यमाप्यते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वाराही मुमुक्षुगण भव पारावार पारङ्गत होसक्ते हैं। पदार्थवादी न्याय और वैशेषिक दर्शन जिस प्रकार पदार्थज्ञान द्वारा तत्त्वज्ञानप्राप्तिपूर्वक मुक्तिपथ प्रदर्शन कराते हैं, योग दर्शन भी जिस प्रकार एकतत्त्व प्राप्ति पुरःसर क्रमशः समाधिद्वारा निर्व्वाणपथ प्रदर्शन कराता है, सांख्यदर्शन जिस प्रकार त्रिविध दुःख की अत्यन्त निवृत्ति को लक्ष्य करके मुक्ति के अर्थ सांख्य विज्ञान का विधान करता है और कर्म्ममीमांसा दर्शन जिस प्रकार संस्कार शुद्धि और क्रिया शुद्धिद्वारा मुक्तिमार्ग में अग्रसर होने के अर्थ उपदेश प्रदान करता है; उसी प्रकार भक्तिशास्त्र दैवीमीमांसा दर्शन भी भगवद्भक्ति की सहायता से त्रिविध शुद्धि सम्पादन करता हुआ मुक्ति के द्वार को उद्घाटित कर देता है।

अन्तर्राज्य और बहिर्राज्य के मध्य भाग में अवस्थित होने से योगदर्शन जिस प्रकार निर्विरोधी और सर्वहितकर है उसी प्रकार दैवीमीमांसा दर्शन भी कर्म्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड के मध्यवर्त्ती होने से अविरुद्ध और सर्व हितकर है। कोई दर्शन अपनी ज्ञानभूमि के अनुरोध से अन्य दर्शन के मत का खण्डन करे तौ भी यदिच वह विशेष हानिजनक नहीं है, तथापि दैवीमीमांसा दर्शन का सर्वाऽविरोधितारूप विशेषत्व और महत्व अवश्य ही स्वीकार करना होगा। समतलभूमि पर पर्य्यटनशील पथिक यदि सहचारियों की पार्वत्यपथभ्रमण की क्रिया-कुशलता की निन्द्रा करके समतल भूमि के भ्रमण-कौशल की प्रशंसा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करे और इसी प्रकार पार्वत्यमार्ग-विचरणशील पथिक यदि अपनी भ्रमणकुशलता की प्रशंसा करतेहुए समतल भूमि पर भ्रमणशील व्यक्ति के भ्रमणकौशल की निन्दा करे, उस स्थल में किसी की कोई हानि नहीं होसक्ती। अधिकन्तु वह देश काल और पात्र भेद से उपकारक ही हुआ करती है। उसी तरह यदि एक दर्शन विज्ञान दर्शनानन्तर विज्ञान के किसी अंश विशेष पर दोषारोपण करे, यहांतक कि विशेष विशेष सिद्धान्त पर्य्यन्त खण्डित करे तौ भी उससे कोई क्षति नहीं होसक्ती। पक्षान्तर से जिस ज्ञानभूमि की प्राप्ति के अर्थ विज्ञान कहाजाता है उस विज्ञान की दृढ़ता और श्रेष्ठता ही सम्पादित होती है, किन्तु तौ भी इस दर्शन में इस प्रकार कोई खण्डन-मण्डन-प्रणाली अवलम्बित नहीं हुई है। सुतरां इस दर्शनशास्त्र की सार्वभौम दृष्टि अवश्य ही सर्वथा प्रशंसनीय है।

सकल शास्त्रों का ही सर्ववादिसम्मत सिद्धान्त यह है कि "ब्रह्मा आदि से आरम्भ करके ऋषि महर्षि पर्य्यन्त सब ही शास्त्र-समूह के स्मारकमात्र हैं, उनके प्रणेता नहीं हैं"। * पूज्यपाद महर्षिगण नित्यस्थित ज्ञानराज्य से अभ्रान्त वैदिक शास्त्र समूह का केवल मात्र आविष्कार करते रहते हैं। चक्रायमाण काल के तीव्र निष्पेषण से किसी किसी शास्त्र का आविर्भाव और किसी किसी शास्त्र का तिरोभाव हुआ करता है। और किसी शास्त्रीय ग्रन्थ

* ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ताः स्मारका न तु कारकाः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

का कितनेक ऋषियों के द्वारा आविष्कार भी होता है।

महर्षि जैमिनि और महर्षि भरद्वाज प्रभृति द्वारा आविष्कृत कर्म्ममीमांसा दर्शन के आश्रय ग्रहण किये विना जिस प्रकार विचित्र विशाल अथच दुरूह कर्म्मरहस्य हृदयङ्गम नहीं किया जासक्ता, उसी प्रकार भक्तिशास्त्र दैवीमीमांसा दर्शन के विज्ञान को हृदयङ्गम करने में असमर्थ होनेपर, चाहे किसी भी सम्प्रदाय का उपासक क्यों न हो वह अपने अधिकार के अनुसार सफलता लाभ करने में समर्थ नहीं होता है; अधिकन्तु स्वाधिकार प्राप्ति के विषय में भग्नमनोरथ होकर विषादग्रस्त होपड़ता है। दैवीमीमांसा दर्शन के रहस्य को न समझकर साम्प्रदायिक उपासकगण पथभ्रष्ट होने के कारण कभी तो कर्ममार्ग में जाकर अधिकार विरुद्ध आचरण करते हैं और कभी ज्ञानमार्ग में जाकर अनधिकार चर्चा में प्रवृत्त होते हैं। पक्षान्तर से अपनी आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में अपने हाथ से ही कण्टकरोपण करते हैं। सुतरां ऐसी अवस्था में उस समय वे "इतो नष्टास्ततो भ्रष्टाः" होते हैं। अतएव कर्म्ममीमांसा जिस प्रकार सकल शाखा एवं सम्प्रदायों के ही कल्पसूत्र और स्मार्तानुशासन की परम सहायभूता है उसी प्रकार दैवीमीमांसा दर्शन भी सकल प्रकार के उपासकों का ही परम आश्रय स्वरूप है यह निःसन्देह है।

वेद के काण्डत्रय के अनुसार मीमांसात्रय भी परस्पर घनिष्ठ सम्बन्धयुक्त है, सुतरां मीमांसात्रय की ज्ञानभूमि

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भी परस्पर नैकट्य भाव से सम्बद्ध है; किन्तु इन तीनों के पुरुषार्थ में यथेष्ट भेद भाव है । कर्म मीमांसा दर्शन कर्म्म को ही मुक्ति का साधन कहता है, दैवीमीमांसा दर्शन भक्ति को ही मुक्ति का उपाय कहकर वर्णन करता है और ब्रह्ममीमांसा वा वेदान्तदर्शन ज्ञान को ही मुक्ति का एकमात्र कारण कहकर प्रतिपन्न करता है । इस प्रकार नाना ज्ञान-भूमियों के विज्ञान के अनुसार पुरुषार्थ की भिन्नता देखकर मुमुक्षुगण के विचलित होने का कोई कारण नहीं है । क्योंकि अन्नमय शरीर के पोषण-विषय में यदि कोई कहे कि शारीरिक यन्त्रों में शरीर के पोषण के अर्थ मुखही प्रधान है, और कोई यदि कहे कि पाकस्थली ही प्रधान है एवं फिर कोई तृतीय व्यक्ति कहे कि हृदययन्त्र ही प्रधान है, ऐसे स्थल में तीनों मनुष्यों की बात ही सत्य होगी; क्योंकि अन्न प्रथमतः मुखद्वारा पाकस्थली में जाता है, और पीछे रसरूप होकर हृदय यन्त्र में प्रवेश करता है एवं वहां से शरीर में सर्वत्र सञ्चालित होकर रक्तरूप से शरीर की रक्षा और पुष्टिसाधन किया करता है । एक यन्त्र में अन्न के प्रवेश करने पर अपने आप ही अन्यान्य यन्त्रों में जाकर वह ठीक ठीक कार्य्य सम्पादन करता है । उसी प्रकार कर्म्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोग, यह तीनों योग परस्पर अन्योन्याश्रय सम्बन्ध से सम्बद्ध हैं ऐसा जानना होगा । सुतरां इस प्रकार मतभेद से लक्ष्यहानि की सम्भावना नहीं है । ज्ञानी भक्त अवश्यही कर्म्मयोगी और तत्त्वज्ञानी होगा ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसी प्रकार कर्मयोगी भी स्वतःहीं अन्यान्य अधिकारद्वय को प्राप्त हुआ करता है। अत एव इस प्रकार मतभेद देख कर मुमुक्षुओं के क्षोभ-प्रकाश और चञ्चलता का कोई कारण नहीं है।

इस दर्शनशास्त्र में परमात्मा को आनन्द स्वरूप सिद्ध करने से सद्भाव में और चिद्भाव में आनन्द की व्यापकता स्वीकार कीगई हैं। इस प्रकार मुक्ति के द्वार को उद्घाटन करके उस निर्वाण परमानन्द पद प्राप्ति के अर्थ पूज्यपाद महर्षि अङ्गिरा ने इस भक्ति शास्त्र दैवीमीमांसा दर्शन का वर्णन किया है। इति।

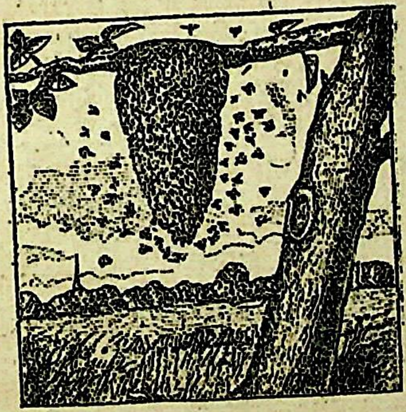

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं तत्सत् ।

दैवीमीमांसा दर्शन ।

रस पाद ।

सकल शास्त्र के मूलभूत वेद में तीन काण्ड हैं कर्म-काण्ड, उपासनाकाण्ड, और ज्ञानकाण्ड। और उस के अनुसार मीमांसादर्शन भी तीन प्रकार के हैं, कर्म-मीमांसा-दर्शन, उपासना-मीमांसा-दर्शन, और ज्ञान-मीमांसा-दर्शन। इसमें से कर्ममीमांसा दर्शन में कर्मकाण्ड के विज्ञान की मीमांसा की गई है इसको पूर्व मीमांसा भी कहते हैं। उपासना-मीमांसा-दर्शन में उपासनाकाण्ड के रहस्यों का वर्णन किया गया है, इसको मध्यमीमांसा वा दैवीमीमांसा भी कहते हैं। और ज्ञान-मीमांसा-दर्शन में ज्ञान काण्ड के तत्त्वों का निर्णय किया गया है, उसको उत्तरमीमांसा वा ब्रह्ममीमांसा भी कहते हैं। कर्मकाण्ड का जैसा धर्म-विज्ञान ही मूल है, वैसेही उपासनाकाण्ड की दैवी-मीमांसा-दर्शन द्वारा प्रतिपादित भक्ति मूल है, इसी लिये दैवी-मीमांसा-दर्शन का आरम्भ करने में पहला सूत्र वक्ष्यमाण रूप से कहा गया है।

अब भक्ति के विषय में जिज्ञासा की जाती है ॥ १ ॥

भक्ति उपासना का मूल है, इस लिये चित्तशुद्धि होजाने के बाद भक्ति के विषय में जिज्ञासा होनी चाहिये।

अथाऽतो भक्तिजिज्ञासा ॥ १ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"अथ" शब्द के उच्चारणमात्रही से मङ्गल होता है क्योंकि स्मृति में लिखा है कि "ओङ्कार और अथ शब्द दोनों ब्रह्माजी का कण्ठ भेदन करके निकले हैं इस कारण ये माङ्गलिक हैं"।* मङ्गलाचरण इसलिये किया जाता है कि जिस के द्वारा पाप का नाश हो, जिस कार्य का प्रारम्भ किया जाता है उस कार्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति हो, और शिष्टाचारानुमोदित श्रुति और स्मृति की तद्विषयक आज्ञा का परिपालन हो। क्योंकि श्रुति में लिखा है कि "समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्" अर्थात् कार्य की निर्विघ्न परिसमाप्ति की इच्छा करनेवाला पुरुष मङ्गलाचरण करे।

"अथ" शब्द का आनन्तर्य अर्थ है अर्थात् निष्काम कर्मादि के द्वारा चित्तशुद्धि के अनन्तरही भक्ति विषयक जिज्ञासा करने का अधिकार प्राप्त होता है। "अतः" शब्द का हेतु अर्थ है क्योंकि भक्तिही जब उपासना का मूल है तो भक्ति के विषय में जिज्ञासा कर्त्तव्यही है ॥ १ ॥

भक्ति-जिज्ञासा-विषय में पहले जानने योग्य कौन पदार्थ है—

परमात्मा रसरूप और माया जड़रूपा है ॥ २ ॥

परमात्मा रसरूप अर्थात् आनन्दरूप है । श्रुति में भी

---

* ओङ्कारश्चाथशब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा ।
कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ ॥

रसरूपः परमात्मा, जड़रूपा माया ॥ २ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहा है कि "परमात्मा रसस्वरूप है," "ब्रह्म आनन्द-रूप है," "ब्रह्म के आनन्दरूप जानलेने से भय की निवृत्ति होजाती है," "आनन्द से सकल जगत् की उत्पत्ति होती है, आनन्द ही में जगत् की स्थिति और लय होता है," इत्यादि। * परमात्मा के वाक् और मन से अतीत होने पर भी जिज्ञासुओं के जानने के लिये सद्भाव, चिद्भाव, और आनन्दभाव, के द्वारा उनका निर्देश कियाजाता है। इन तीनों भावों के प्रतिपाद्य विषय एक होने पर भी कर्म-मीमांसा-दर्शन के द्वारा प्रधानतः सद्भाव का प्रतिपादन होता है, ब्रह्म-मीमांसा-दर्शन के द्वारा चिद्भाव का प्रतिपादन होता है, और दैवी-मीमांसा-दर्शन के द्वारा आनन्दभाव का प्रतिपादन होता है। जगद्धात्री महामाया जड़रूपाहै अर्थात् परमात्मा की चेतनशक्ति के विना प्रकृति के द्वारा कोई कार्य नहीं होसकता है। प्रकृति माता सर्वत्र व्यापक चेतन-सत्ता के प्रभावसे ही परिणामिनी होकर अनन्त वैचित्र्य-मयी सृष्टिलीला का विस्तार करती है। जैसा कि श्रुति

* "रसो वै सः" "आनन्दं ब्रह्मेति व्यजानात्"
"आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्न बिभेति कुतश्चन"।
"आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्ति"। इत्यादि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में भी कहा है कि "उन्हीं की ज्योति से सब ज्योतिर्मय हैं, सब की चेतन-सत्ता उन्हींसे सम्पन्न होती है"। "प्रकृति माया है और ब्रह्म माया का प्रेरक मायी है"। तथा स्मृति में भी कहा है "परमात्मा प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं, उनकी वह शक्ति है और उनकेही सान्निध्य से प्रकृति में चेतनता आती है, जैसे चुम्बक के सान्निध्य से लोहे में कार्यकारिता आती है ऐसेही जड़ाप्रकृति पुरुष के सान्निध्य से ही सचेतना होकर सृष्टि स्थिति और प्रलय कार्य किया करती है।" *

"गुणमयी माया के भीतर प्रवेश करके ब्रह्महो सृष्टि स्थिति प्रलय कार्य किया करते हैं। जन्मरहित परमात्मा स्वकीय शक्तिरूपा गुणमयी अजा प्रकृति में चेतन सत्ता का सान्निवेश करते हैं"। † "पूर्व संस्कार के अनुसार स्पन्दनधर्मिणी

---

* "तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति"
"मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्"।
स मां पश्यति विश्वात्मा तस्याऽहं प्रकृतिः शिवा।
तत्सान्निध्यवशादेव चैतन्यं मयि शाश्वतम्॥
जड़ाऽहं तस्य संयोगात्प्रभवामि सचेतना।
अयस्कान्तस्य सान्निध्यादयसश्चेतना यथा"॥

† "आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज!।
सृजन्रक्षन्हरन्विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम्"॥
"तं देवशक्त्यां गुणकर्मयोनौ
रेतस्त्वजायां कविरादधेऽजः"।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकृति में जब सृष्टि की सूचना होती है तब परमात्मा उस प्रकृति में अपनी चेतनसत्ता को प्रदान करते हैं जिस से सृष्टि का विकास हुआ करता है इत्यादि"। † ॥ २ ॥

रस और जड़ का तत्त्व स्पष्टतर करने के लिये लक्षण का निर्देश किया जाता है—

रस ज्ञानमय और जड़ अज्ञानमय है ॥ ३ ॥

रस ज्ञानात्मक है और जड़ अज्ञानात्मक है। आनन्द-रूप परमात्मा की आनन्दसत्ता जगत् में सर्वत्र विद्यमान होने से उस आनन्द की प्राप्ति जीव को दो प्रकार से होती हैं, एक प्रकृति पर प्रतिबिम्बित आनन्द और एक साक्षात् चिदानन्द। प्रकृति पर प्रतिबिम्बित जो आनन्द है वह वास्तविक आनन्द की छायामात्र है इसको सुख कहते हैं, और प्रकृति के पर पार में स्थित जो शुद्ध आनन्द है उस को आनन्द कहते हैं। श्रुति और स्मृतिमें कहा है "पर-मानन्द की स्थिति ब्रह्ममेंहीं है, अन्यान्य जीव उस आनन्द की छायामात्र भोग करते हैं"। * वह छाया माया के द्वारा आती है, माया भ्रमकारिणी है इसलिये माया से बद्ध अ-ज्ञानी जीव वैषयिक सुख को ही वास्तविक आनन्द समझ

---

† दैवात् क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्।
आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम् ॥

रसो ज्ञानमयो जड़श्चाज्ञानमयः ॥ ३ ॥

* एषोऽस्य परमानन्द एतस्यैवानन्दस्याऽन्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर उसमें लिप्त होजाते हैं, जैसा कस्तूरी मृग अपने नाभि-देश में कस्तूरी होने पर भी उसे नहीं जानकर उसी गन्ध से उन्मत्त हो उसकी खोज में इधर उधर घूमता रहता है, इसी प्रकार सर्वव्यापक आनन्दरूप भगवान् की आनन्द-सत्ता सकल जीवों में व्यापक रहने से जीव की समस्त प्रवृत्ति उसी आनन्द सत्ता के लाभ के लिये होती है, * परन्तु अविद्याग्रस्त जीव पाषाण में स्पर्श मणि के भ्रम की न्यांई नाशवान् और अन्त में दुःख देनेवाले विषय-सुखको ही वास्तविक सुख समझ कर प्रतारित होजाते हैं, इसलिये जिज्ञासुओं के सन्देह दूर करने और लक्ष्य स्थिर करने के लिये कहाजाता है कि स्वरूप में ज्ञान की नित्यस्थिति होने से रस ज्ञानमय है अर्थात् ज्ञान की पूर्णता से ही आनन्द की पूर्णता होती है और श्रुति में भी कहा है कि निर्विकल्प समाधि में स्थित पूर्ण ज्ञानी योगी को जो परमानन्द की प्राप्ति होती है सो शब्द के द्वारा प्रकाशित नहीं की जा-सक्ती है केवल ज्ञानराज्य में उसका अनुभव होता है और

अथात्र विषयानन्दो ब्रह्मानन्दांशरूपभाक् ।
निरूप्यते द्वारभूतस्तदंशत्वं श्रुतिर्जगौ ॥
एषोऽस्य परमानन्दो यो खण्डैकरसात्मकः ।
अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते ॥

* यदा वै करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति ना सुखं लब्ध्वा करोति सुखमेव लब्ध्वा करोति सुखं तद्विजिज्ञासस्व नाऽल्पे सुखमस्ति भूमैव तत्सुखम् । इति श्रुतिः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीगीताजीमें भी कहा है कि चित्त को निरुद्ध करके ज्ञानी योगी जब आत्मा का साक्षात्कार करते हैं तो उनको इन्द्रियों से अतीत एवं प्रकृति राज्य से भी अतीत नित्यानन्द का लाभ होता है जिस आनन्द के लाभ करने से अन्य किसी आनन्द का लाभ उन्हें श्रेष्ठतर नहीं मालूम होता है और जिस आनन्द में अवस्थित होने पर प्रारब्धजनित कोई प्रबल दुःख होने पर भी उससे वे ज्ञानी पुरुष अभिभूत नहीं होते हैं * । और स्मृति में भी लिखा है कि शब्द और माया से परे जो ब्रह्म का ज्ञानस्वरूप परमपद है उसमें शोकरहित पूर्णानन्द विद्यमान है † । सृष्टि अज्ञान

* समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा
यदेतदन्तःकरणेन गृह्यते ॥
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया ।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवाऽयं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥
यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपिविचाल्यते ॥

† शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो
माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ।
तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो
ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से उत्पन्न है इस लिये जड़ अज्ञानमय है क्योंकि कार्य और कारण दोनों एकरूपही होता है। नाम और रूप से रहित अद्वितीय कारण ब्रह्म में अनन्त वैचित्र्यपूर्ण नाम रूपात्मक कार्य ब्रह्म की जो प्रतीति होती है, यह केवल अघटन-घटनापटीयसी माया की ही लीला है। कार्य के देखने से कारण का अनुमान होता है इसलिये माया का कार्यरूप यह जगत् अज्ञान से ही इस विचित्रता को प्राप्त हुआ है; इसकी कारणरूपा जड़ा मायाभी अज्ञानरूपिणी है॥ ३॥

आत्मा और माया के परस्पर विरुद्ध होने से उनकी संख्या में जो संशय है, उसका निरास करते हैं—

ज्ञानरूप होने से वह एकही है, और अज्ञान रूप होने से माया अनन्त है॥ ४॥

आत्मा अद्वितीय है, क्योंकि वह ज्ञानरूप है। माया अनन्त है क्योंकि वह अज्ञानरूपिणी है। सर्वव्यापक पूर्ण विकाररहित सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा एकही है, श्रुति में भी कहा है कि वह परमदेव एक है, सब भूतों में स्थित है, सर्वव्यापक है और सकल प्राणियों की अन्तरात्मा है *। ऐसे आत्मा के इस अद्वितीयरूप का तभी ज्ञान होसकता है जब कि साधक निर्विकल्प समाधि भूमि में भली भांति आरूढ़ होजायँ और सम्यक् ज्ञान लाभ करलें,

ज्ञानरूपत्वात्स एक एव, अज्ञानरूपत्वाच्च सानन्ता॥ ४॥

* एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

क्योंकि ज्ञानही अद्वितीय आत्मा के स्वरूपोपलब्धि का कारण है, जैसा कि श्रुति में लिखा है कि जो नित्य का भी नित्य है, जो चेतन का भी चेतन है और जो एक होकर सबकी कामना को पूर्ण करते हैं। उस अद्वितीय परमात्मा को साधक ज्ञानद्वारा जानकर सकल पाशों से मुक्त होजाता है * और स्मृति में भी कहा है कि अद्वितीय ब्रह्म जगत्के सर्वत्र व्याप्त है, जीव ब्रह्मही है इसलिये जीव ज्ञान के द्वारा अपने स्वरूप को जान कर अद्वितीय चिदानन्द में निमग्न होजाताहै + । प्रकृति का वैभवरूप सृष्टि अज्ञान का विलासमात्र है, इसलिये सृष्टि का विकास अनन्त रूप युक्त है, सृष्टि की विचित्रता में अज्ञान ही कारण है। और माया अज्ञानरूपिणी है इस लिये वह अनन्ता है ॥ ४ ॥

ज्ञानस्वरूप परमात्मा किस प्रकार लभ्य है ?—

सृष्टि से अतीत और बुद्धि से परे वह परमात्मा भक्ति से प्राप्त किया जाता है ॥ ५ ॥

* नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनाना
मेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं साङ्ख्ययोगाधिगम्यं
ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।

\+ वक्तव्यं किमु विद्यतेऽत्र बहुधा ब्रह्मैव जीवः स्वयं
ब्रह्मैतज्जगदापराणु सकलं ब्रह्माद्वितीयश्रुतेः ।
ब्रह्मैवाऽहमिति प्रबुद्धमतयः संत्यक्तबाह्याः स्फुटं
ब्रह्मीभूय वसन्ति सन्ततचिदानन्दात्मनैव ध्रुवम् ॥

सृष्टेरतीतोबुद्धेश्च परः स भक्तिलभ्यः ॥ ५ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सृष्टि त्रिगुणमयी है क्योंकि वह प्रकृति का परिणाम है। परमात्मा निर्गुण है इसलिये सृष्टि से अतीत है। बुद्धि का भी महत्तत्त्व से सम्बन्ध है इस लिये बुद्धि भी प्राकृतिकी है इस कारण बुद्धि से भी परमात्मा लभ्य नहीं है, जैसा कि श्रुति में कहा है, इन्द्रियों से परे इन्द्रियों के विषय हैं, विषयों से अतीत मन है, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से महत्तत्त्व परे है; और महत्तत्त्व से अव्यक्त परे है और अव्यक्त से आत्मा परे है; आत्मा से परे कोई नहीं है, आत्मा अन्तिम गति है। आत्मा शब्द स्पर्श आदि से रहित, अनादि, अनन्त और महत्तत्त्व से परे है, इस आत्मा के ज्ञान से जन्म मृत्यु नहीं होती *। और स्मृति में भी कहा है कि आनन्दरूप परमात्मा शब्द राज्य से परे है और माया भी उनको स्पर्श नहीं करसकती। × इसप्रकार से परमात्मा समस्त प्राकृतिक सम्बन्ध से अतीत होने पर भी

---

* इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं
तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं
निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥

× शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो
माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

केवल भक्तिही के द्वारा प्राप्य है। जैसा कि श्रुति में कहा है, भक्तिही के द्वारा परमात्मा प्राप्य है, भक्तिही से परमात्मा का साक्षात्कार होता है, भगवान् भक्तिहीके वश में है, इस लिये भक्तिही श्रेष्ठ है। उपनिषद्‌रूप धनुष को लेकर उपासना रूप तीक्ष्ण शर सन्धान करके भक्तियुक्त चित्त से जब उस शर का प्रयोग किया जाय तभी परमात्मारूप लक्ष्य का भेद होसकता है *। और स्मृति में भी कहा है † कि श्रुति के द्वारा लभ्य परमात्मा साधक के भक्तियुक्त हृदय कमलरूप आसन पर आसीन होते हैं। साधक प्रकृति के गुणों का परित्याग करके ज्ञान और वैराग्यसे युक्त होकर भक्ति के द्वारा भगवान् को प्राप्त करता है †। और श्रीगीताजीमें भी लिखा है कि मैं वेद, तपस्या,

---

तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो
ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥

* भक्तिरेवैनं नयति भक्तिरेवैनं दर्शयति भक्तिवशः पुरुषो भक्तिरेव भूयसी।
धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासा निशितं सन्धीयत।
आयम्य तद्भागवतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाऽक्षरं सौम्य विद्धि ॥

† त्वं भक्तियोगपरिभावितहृत्सरोज-
आस्से श्रुतीक्षितपथो ननु नाथ ! पुंसाम् ।
असेवया यं प्रकृतेर्गुणानां-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दान, यज्ञ, किसी के द्वारा प्राप्य नहीं हूँ, केवल अनन्य भक्ति के द्वाराही मेरे इस रूप का साक्षात्कार होसकता है*।

भगवान् के साक्षात्कार के द्वारा जो मुक्ति की प्राप्ति है सो भी भक्तिही के द्वारा भाग्यवान् साधक को होती है, इसलिये भक्तिही मुक्ति का कारण है जैसा कि स्मृति में लिखा है—कि भगवान् में भक्तियुक्त चित्त होकर आनन्द चित्त साधक उस ध्येय वस्तु में अपने चित्त को लगाता हुआ अन्त में गुणातीत भक्त आत्म साक्षात्कार होने से निःश्रेयस पद को प्राप्त करता है + ॥ ५ ॥

ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ॥
योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या
मां प्रत्यगात्मानमिहावरुद्धे ॥

* नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवं विधोऽर्जुन !।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ! ॥

\+ एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो
भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात्।
औत्कण्ठ्यवाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः
तच्चापि चित्तवडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते॥
मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं
निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः।
आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेक-
मन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस भक्ति का लक्षण क्या है ?—

वह अनुरागरूपा है ॥ ६ ॥

ऊपर कही हुई भक्ति अनुरागात्मिका है। चित्त की जितनी वृत्तियां हैं उन सबों में प्रधान दो वृत्ति कारणरूप हैं; यथा—राग और द्वेष। उसमें से द्वेषवृत्ति तमः प्रधान होने से दुःख का कारण है और रागवृत्ति सत्त्वप्रधान होने से सुख का कारण है, योगदर्शन में भी लिखा है कि "सुखानुशयी रागः" "दुःखानुशयी द्वेषः" अर्थात् सुखकारक राग और दुःखकारक द्वेष कहा जाता है। उसमें अधोगति देनेवाली द्वेषवृत्ति से विपरीत, उन्नति का कारण और अनुरागवृत्ति की समभूमि में स्थित, अनुरागरूपिणी भक्ति है। स्मृति में भी कहा है, गङ्गा की अविरल धारा की न्यांई सकल भूत में स्थित भगवान् में जो अहैतुक अविच्छिन्न अनुराग है उसे भक्ति कहते हैं ॥ ६ ॥ *

सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या
तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ।
हेतुत्वमप्यसति कर्त्तरि दुःखयोर्यत्—
स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥
सानुरागरूपा ॥ ६ ॥

* मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिन्ना यथा गङ्गाम्भसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम् ।
अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ओं तत्सत् ।

श्रीमद्भगवद्गीता

(भाष्यभूमिका)

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्मविनिस्सृता ॥

सब प्रकार के शास्त्र और ज्ञान के आधार वेद हैं। वेदों में प्रधान अङ्ग उपनिषद् कहे जाते हैं। उपनिषदों का सार श्रीगीताजी हैं। यथा:—

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः ।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥"

समस्त उपनिषद् गऊरूप हैं, श्रीकृष्णजी महाराज उसके दोहनेवाले हैं, अर्जुनजी वत्सरूप और सुधीजन उसके पीनेवाले हैं एवं पान करने योग्य दुग्धरूपी गीतामृत है।

पूर्णज्ञानयुक्त वेद नित्य हैं। प्रलय काल में भी सब संसार के लय होजाने पर वेद ॐकार के स्वरूप में लीन होकर रहते हैं और पुनः सृष्टि प्रकट होनेपर वेदों का यथावत् आविर्भाव हुआ करता है। यथा:—

"अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।"
"युगान्तेऽन्तर्हितान्वेदान्सेतिहासान्महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥"

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वेद आदि अन्त रहित, नित्य और स्वयम्भू भगवान् के द्वारा प्रकाशित हैं। ऋषियोंने ब्रह्माजी के द्वारा आदिष्ट होकर तपस्या के बल से प्रलय में लयहुए वेद और इतिहासों को सृष्टि के प्रारम्भ में प्राप्त किया था।

वेदों का महत्त्व इस कारण से अधिक है कि वेद नित्य होने के कारण वे मनुष्यप्रणीत नहीं हैं। केवल सृष्टि के प्रारम्भ में समाधियुक्त योगिराज महर्षियों के अन्तःकरण में उनका आविर्भाव होता है। वेदों में ज्ञान की पूर्णता के कारण सत्त्व, रज और तमोगुणरूपी त्रिगुण और अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपी त्रिभाव समरूप से विद्यमान हैं। इसी कारण वेद स्वतः पूर्ण अभ्रान्तज्ञानयुक्त और नित्य हैं; इसको सब दार्शनिकों ने एकमत होकर स्वीकार किया है। इसीसे महर्षि अङ्गिराजी ने कहा है:—

"गुणभावमयत्वाद्भगवद्वाक्यं वेदः।"

"स्वतः पूर्णोऽभ्रान्तो नित्यश्च।"

त्रिगुण और त्रिभाव से पूर्ण होने के कारण वेद भगवद्वाक्य हैं, वे स्वतः पूर्ण अभ्रान्त तथा नित्य हैं।

यह संसार त्रिगुणात्मक व त्रिभावात्मक है। इस संसार में जो कुछ है सो त्रिगुणात्मक है क्योंकि रजोगुण से सृष्टि, सत्त्वगुण से स्थिति और तमोगुण से सब पदार्थों का लय हुआ करता है, एवं अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीन भावों से इस संसार का अनुभव होता है। यथा महर्षि अङ्गिराजी ने कहा है:—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"गुणैः सृष्टिस्थित्यन्ता भावैस्तदनुभवः ।"

गुणों के द्वारा सृष्टि, स्थिति और प्रलय होते हैं और भावों के द्वारा उनका अनुभव होता है ।

जितने प्रकार के शास्त्र हैं उनमें एकाधार से त्रिगुण और त्रिभाव की स्थिति नहीं है। वेदों में एकाधार से त्रिगुण और त्रिभाव की स्थिति होने के कारण वेदों का इतना अधिक महत्त्व है। वेदों की प्रत्येक श्रुति त्रिभाव से पूर्ण होने के कारण उनकी प्रत्येक श्रुति के आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थात् ज्ञानकाण्ड सम्बन्धीय, उपासनाकाण्ड सम्बन्धीय और कर्मकाण्ड सम्बन्धीय ये तीन प्रकार के अर्थ हुआ करते हैं। यही वेद का असाधारण महत्त्व है सो स्मृति में कहा भी है:—

"यथा दुग्धञ्च भक्तञ्च शर्कराभिः सुमिश्रितम् ।
कल्पितं देवभोगाय परमान्नं सुधोपमम् ॥
तथा त्रैविध्यमापन्नः श्रुतिभेदः सुखात्मकः ।
नयते ब्राह्मणं नित्यं ब्रह्मानन्दं परात्परम् ॥"

जैसा दुग्ध, चावल और शक्कर मिलाने से सुमिष्ट एवं देवभोगयोग्य परमान्न बनता है वैसेही अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत इन तीनों भावों से युक्त अमृतमयी श्रुति ज्ञानी पुरुष को ब्रह्मानन्द प्राप्त कराती है।

जिस प्रकार वेदों की प्रत्येक श्रुति के अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत रूप तीन प्रकार के लक्ष्य, तीन प्रकार के स्वरूप और तीन प्रकार के अर्थ होते हैं उसी प्रकार श्रीमद्भ-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गवद्गीता के भी उपनिषदों की सारभूता होने के कारण तीन प्रकार के स्वरूप और तीन प्रकार के भावपूर्ण लक्ष्य एवं अर्थ हैं इसीसे शास्त्रों में गीता का महत्त्व इतना अधिक है।

सृष्टि से परे जो निष्क्रिय पद है उसको ब्रह्म कहते हैं; और सर्वसाक्षी सर्वात्मा सृष्टि, स्थिति व लय के द्रष्टा सगुण ब्रह्मरूपी परमपुरुष को ईश्वर कहते हैं;एवं अनन्त वैचित्र्य-युक्त सृष्टिलीलामय अनन्त ग्रहनक्षत्रादि लोकों से पूर्ण अनन्तरूपधारी स्थूलब्रह्म विराट्र पुरुष कहाते हैं; यही तीन रूप त्रिभावमय हैं। जिसप्रकार ब्रह्म को अध्यात्म, ईश को अधिदैव और विराट्र पुरुष को अधिभूत रूप कहकर शास्त्रों में वर्णन किया है उसी प्रकार संसार भी तीन रूप से देखा जाता है। जिस शास्त्रीय शब्द के तीन रूप हों और जो शास्त्र त्रिभावप्रकाशक हो वही पूर्ण कहाता है। वेद त्रि-भावात्मक हैं और श्रीगीताजी भी त्रिभावात्मक हैं।

श्रीगीताजी का अध्यात्मरूप नित्य स्थायी है। ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध से जो कुछ ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है, जो कुछ ऋषि देवता पितरादि व ग्रहनक्षत्रादि ब्रह्माण्ड में हैं वे ही इस पिण्डरूपी देह में हैं। यथा संहिताओं में कहा है:—

"ब्रह्माण्डपिण्डे सदृशे ब्रह्मप्रकृतिसम्भवात्।
समष्टिव्यष्टिसम्बन्धादेकसम्बन्धगुम्फिते॥
ऋषिदेवौ च पितरो नित्यं प्रकृतिपूरुषौ।
तिष्ठन्ति पिण्डे ब्रह्माण्डे ग्रहनक्षत्रराशयः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पिण्डज्ञानेन ब्रह्माण्डज्ञानं भवति निश्चितम्।
गुरूपदेशतः पिण्डज्ञानमाप्त्वा यथायथम्॥"

ब्रह्म और प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण ब्रह्माण्ड और पिण्ड एक रूप और समष्टि व्यष्टि विचार से एक सम्बन्ध युक्त हैं। जैसे ब्रह्माण्ड में प्रकृति और पुरुष, नित्य ऋषि देवता और पितृगण तथा ग्रहनक्षत्रादि विद्यमान हैं वैसेही पिण्डशरीर में भी हैं। गुरूपदेश के द्वारा पिण्ड का ज्ञान लाभ करके पश्चात् साधक ब्रह्माण्ड का ज्ञान लाभ करता है।

धर्मक्षेत्र यह शरीर है क्योंकि इस शरीररूपी धर्मक्षेत्र को साधनरीति द्वारा कर्षित करने से इसी देह की सहायता से धर्म अर्थ काम व मोक्षरूपी चारों फलों की प्राप्ति होती है। धर्मपरायण पञ्चपाण्डव ही धर्म्म में नियुक्त पांचों तत्त्व हैं जिनके रक्षक और इस देहरूपी क्षुद्र ब्रह्माण्ड के चालक आज्ञाचक्रस्थित कूटस्थ चैतन्य ही श्रीकृष्ण महाराज हैं। पांचों तत्त्वों के मध्यस्थित मध्यशक्तिरूपी अग्नितत्त्व ही श्रीअर्जुनजी का स्वरूप है उसी शक्ति को यथाधर्म नियोजित करने के लिये श्रीगीताजी का नित्य उपदेश आज्ञाचक्र में नित्य विराजमान है। पाप करने की प्रवृत्ति होतेही जीव को चुपके से अन्तःकरण में कौन कहदेता है कि ऐसा मत कर? देह में नित्य विराजमान कूटस्थ चैतन्य रूपी श्रीभगवान् ही इस प्रकार से इस देह के साक्षी रहकर जीव को पाप कर्मों से रोका करते हैं। इसी भगवान् के नित्य उपदेश का पूर्ण रूप ही श्रीगीताजी हैं। दूसरी ओर सदसद्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विचार रहित अन्धा मन ही धृतराष्ट्र है। ज्ञाननेत्रविशिष्ट सर्वदर्शी बुद्धि ही सञ्जय है। अन्तःकरण की सौ प्रवृत्ति देनेवाली और सौ निवृत्ति देनेवाली इस प्रकार से दो सौ वृत्तियां योगियों ने कल्पित की हैं उनमें से सौ पापजनक वृत्तियां मानी गई हैं। अर्थात् सौ वृत्ति प्रवृत्ति की जो हैं सो मन की वृत्तियां कहाती हैं। ये ही प्रवृत्ति देनेवाली पापजनक सौ वृत्तियां ही धृतराष्ट्र के दुर्योधनादि सौ पुत्र हैं। इसी पाप और पुण्य राज्य की प्रवृत्ति और निवृत्तिजनक बड़ी दो सेनाओं के बीच कूटस्थ चैतन्यरूपी शस्त्रधारण रहित निःसङ्ग श्रीभगवान् श्रीकृष्ण का नित्य उपदेश ही श्रीगीताजी का अध्यात्मस्वरूप है। यह अध्यात्मस्वरूप प्रत्येक ब्रह्माण्ड में तो क्या प्रत्येक पिण्डरूपी देह में नित्य विराजमान है। इस नित्यस्वरूप का दर्शन और इस नित्य उपदेश की प्राप्ति अन्तर्मुखी साधक को सदा होसक्ती है।

श्रीगीताजी का अधिदैव स्वरूप कुछ और ही है। सृष्टि के प्रारम्भ में श्रीभगवान् ब्रह्माजी की इच्छा से जो सनक सनन्दनादि चार महापुरुषों की प्रथम सृष्टि हुई वह सृष्टि पूर्ण निवृत्तिवाली हुई। उन चारों महात्माओं से सृष्टिलीला का विस्तार नहीं होसका। उसके अनन्तर जो दूसरा सृष्टिक्रम हुआ तो श्रीभगवान् ब्रह्माजी की इच्छा से मरीचि अङ्गिरादि सप्त ऋषियों की सृष्टि हुई। ये सातों आदि पुरुष प्रवृत्ति के चालक हुए और उन्हींसे जगत् के सब जीवों की उत्पत्ति हुई। निवृत्ति का लक्ष्य एकमात्र परमात्मा ही

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है परन्तु प्रवृत्ति का लक्ष्य अनन्त विषय समूह होने के कारण प्रवृत्ति का विस्तार अनन्त होगया। यदि धर्म्मानुकूल प्रवृत्ति हो तो उससे निवृत्ति होकर परमपद की प्राप्ति क्रमशः होसक्ती है। श्रीभगवान् अङ्गिराजीने कहा है:—

"प्रवृत्तिनिवृत्त्युपपत्तेः"

"उभयतस्त्रिविधशुद्धिसम्भवःप्रत्यूहतारतम्यादाद्या गौणी मुख्याऽपरा तु।"

प्रवृत्ति और निवृत्ति यह दोनों ही मुक्ति के पथ हैं, दोनों में ही त्रिविधशुद्धि की सम्भावना रहती है; विघ्न के तारतम्यानुसार प्रवृत्तिमार्ग गौण और निवृत्तिमार्ग मुख्य है।

जिस प्रकार सारे संसार में द्वन्द्व दिखाई देता है, यथा:— सत्त्व और तम, प्रकाश और अन्धकार, दिन और रात, सुख और दुःख इत्यादि; उसी प्रकार वृत्तिराज्य में निवृत्ति और प्रवृत्ति का अनन्त विस्तार है। सत्त्वप्रधान रजोगुण से निवृत्ति और तमःप्रधान रजोगुण से प्रवृत्ति का उदय मनुष्य में हुआ करता है। कर्म्म जगत् के चालक देवताओं में भी इसी प्रकार से दो अधिकार पाये जाते हैं वे ही देव और असुर कहाते हैं। वेदों में और शास्त्रों में जो बहुधा देवासुर संग्राम का वर्णन देखनेमें आता है सो इसी अपूर्व विज्ञान से युक्त है। जब इस मनुष्यलोक में तमःप्रधान पाप का प्रवाह अधिक रूप से प्रवाहित होता है तब ही उस पापस्रोत को पुण्य की ओर फेरने के लिये देवताओं का अवताररूप से मनुष्यसमाज में जन्म हुआ करता है। परन्तु जब

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धर्म्म की ग्लानि अधिक से अधिक बढ़जाती है तब स्वयं भगवच्छक्ति की अवतारणा हुआ करती है। क्योंकि साधारण कार्य्य देवताओं से होसक्ता है; परन्तु असाधारण कार्य्य के लिये साक्षात् भगवच्छक्ति की आवश्यकता होती है। कलाभेद से अवतार के अनेक भेद हैं। सब प्रकार के जीवों में विभूतिपर्य्यन्त आठ कला मानी गई है; और नौ कला से षोडश कला पर्यन्त अवतारों की कला शास्त्रों में कहीं गई है। श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र षोडश कला से पूर्ण अवतार थे। उनका मनुष्यविग्रह धारण करना केवल लोककल्याणार्थ लीलामात्र था। द्वापर के अन्त में घोर तमोगुण से जगत् आच्छन्न होजाने के कारण मनुष्य का हृदय अज्ञानमूलक घोर इन्द्रियप्रवृत्ति से अभिभूत हो जाने पर उसके दूर करने के अर्थ प्रबलशक्ति की आवश्यकता थी। उस समय राजाओं में प्रायः असुरों के अनेक अवतार उत्पन्न होकर वे स्वार्थपरता और अधर्म का अति विस्तार करने लगे थे। उनके साथ कालधर्म के फन्दे में फसकर अनेक देवांशों से उत्पन्न ब्राह्मण और क्षत्रियगण भी अधर्म के पक्षपाती बनगये थे। जब घोर समय आता है तब देवांश से उत्पन्न मनुष्यगण भी असुरभाव के पक्षपाती बनजाते हैं। उस समय में ऐसाही हुआ था। भीष्मादि का कौरवों का पक्ष लेना इसी कालधर्म का ही फल है। इसीसे अधर्म को दबाकर धर्मप्रवाह को ठीक करने के अर्थ अनेक देवताओं को अवतार लेना पड़ा था; और इसी अधिदैव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण से देवांश से पाण्डवादि का जन्महुआ था एवं उन को निमित्त बनाकर श्रीभगवान् के पूर्णावतार श्रीकृष्ण महाराज ने महाभारत के युद्ध में दुर्योधनादि अनेक मदोन्मत्त अधर्म पक्षपाती आसुरी प्रजा का नाश करके धर्ममार्ग का पुनः प्रचार किया था; और इस घोर युद्ध के प्रारम्भ में यथार्थ लक्ष्य को लक्षित कराने के अर्थ नरनारायणावतार श्रीकृष्णार्जुन संवाद से श्रीगीताजी का प्राकट्य हुआ था। उस समय महाभारत के युद्ध द्वारा आसुरी शक्ति का नाश हुआ था; और गीता-विज्ञान के प्रकाश द्वारा वेद का विज्ञान प्रकाशित करके मनुष्यों को यथार्थ धर्ममार्ग दिखा दिया गया था। यही श्रीगीताजी का अधिदैव स्वरूप है।

श्रीगीताजी का अधिभूत स्वरूप स्थूल अक्षरमय है। कालधर्म के अनुसार ज्ञान का आविर्भाव और तिरोभाव हुआ करता है। काल सदा निर्लिप्त होनेपर भी तत्तत् काल के समष्टि जीवों के समष्टि प्रारब्ध के अनुसार तत्तत् काल का स्वरूप ऐसेही दिखाई देने लगता है। काल के सदा निर्लिप्त और अविकारी होने पर भी केवल समष्टिजीवों के प्रारब्धानुकूल ही सत्य द्वापर आदि युगों की उत्पत्ति हुआ करती है। और कालधर्म के प्रबल होने के कारण कालधर्म का प्रभाव तत्तत्काल में उत्पन्न सब जीवों को न्यूनाधिक रूप से भोगना पड़ता है। इसी अपरिहार्य नियम के अनुसार विशेष विशेष कालमें उत्पन्न मनुष्यों की प्रज्ञा का सङ्कोच और विकाश यथायोग्य रीति से होना अवश्य-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

म्भावी है। सत्यादि युगों में मनुष्यों की प्रज्ञा का विकाश विशेष रहने के कारण ११८० शाखायुक्त वेद की उतनी ही संहिता, उतने ही ब्राह्मण और उतने ही उपनिषदों के तात्पर्य्य ग्रहण करने की शक्ति उस समय के मनुष्यों में होती थी। क्रमशः तमःप्रधान काल के उदय होने पर मनुष्यों की प्रज्ञा का सङ्कोच होगया था इस कारण एकाधार में वेद प्रतिपाद्य विज्ञान का रहस्य प्रकाशित करने की आवश्यकता हुई थी। वेदों में पुस्तक के पांच भेद किये हैं। ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, बिन्दु और अक्षरमय पुस्तक। यथाः—

"ब्रह्माण्डपिण्डौ नादश्च बिन्दुरक्षरमेव च।
पञ्चैव पुस्तकान्याहुर्योगशास्त्रविशारदाः॥"

अक्षरमय पुस्तक के कालधर्म से नष्ट होजानेपर भी वेद अथवा वेदसम्मत शास्त्रसमूह अन्य चार प्रकार की पुस्तकों के आकार में रहते हैं। कल्पान्तर में उक्त सब प्रकार की पुस्तकों में हेर फेर हुआ करता है, और जिस कल्प में जितना वेद आविर्भूत होता है वह उस कल्प के महर्षियों के अन्तःकरण में हुआ करता है। इसी प्रकार शास्त्रसमूह भी ऋषि मुनि और ऋषियों के अंश से उत्पन्न विद्वानों के द्वारा समय समय पर प्रकाशित होकर जगत् का कल्याण किया करते हैं। द्वापर के अन्त में मनुष्यों की प्रज्ञा का सङ्कोच होजाने से नारायणरूपी श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र और नररूपी अर्जुनजी के सम्बन्ध से श्रीभगवान् कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजी के द्वारा पञ्चमवेदरूपी महाभारत के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्तर्गत अक्षरमयी श्रीगीताजी का प्रकाश हुआ है। यही श्रीगीताजी का आधिभौतिक स्वरूप है।

भाव की असाधारण शक्ति है। भाव की सहायता से ही जीवों को सृष्टिस्थितिलयात्मक जगत् का ज्ञान होता है। वृत्तिराज्य में भाव ही प्रधान है। भाव शुद्धिद्वारा अधर्म कार्य्य भी धर्म्म में परिणत होसक्ता है। असद्वस्तु भी सद्-भाव में परिणत हो सक्ती है। यज्ञ की भावशुद्धि से जीव-हिंसारूपी पशु का बलिदान भी कर्ता की धर्मवृद्धि का कारण होता है। इसी प्रकार भाव की असाधारण शक्ति के कारण एक भाव दूसरे भाव में परिणत होकर अलौकिक फलप्रदान कर सक्ता है। ब्रह्म, ईश और विराट् इन तीनों भावों के नित्य होने के कारण अध्यात्म, अधिदेव और अधि-भूत ये तीनों भाव संसार में नित्य और व्यापक हैं। श्री विष्णुभागवत में जो आधिभौतिक रासलीला का वर्णन है और श्रीदेवीभागवत में जो आध्यात्मिक रासलीला का वर्णन है सो नैमित्तिक और नित्य सम्बन्धयुक्त है। अतः देवीभा-गवत का पाठक विष्णुभागवत की रासलीला को असत् नहीं मानसक्ता, क्योंकि भाव नित्य हैं। जो आध्यात्मिक भाव में स्थित है उसका आधिदैविक और आधिभौतिक भाव होना स्वतः सिद्ध है। यदि आध्यात्मिकभावपूर्ण किसी विषय का आधिदैविक स्वरूप व आधिभौतिक स्वरूप प्रका-शित नहीं हुआ हो तो भविष्यत् में होगा। जो अधिभूत में स्थित है उसका आधिदैविक और आध्यात्मिक रूप अवश्य

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है। अतः श्रीगीताजी के तीनों स्वरूप नित्यसिद्ध हैं।

नित्यसिद्ध ऋचाएं जो महर्षियों के समाधिस्थ अन्तःकरण में आविर्भूत होती हैं वेही वेद हैं। और वेद की स्मृति की सहायता से महर्षिगण अपनी भाषा में जो शास्त्र प्रकाशित करते हैं वही स्मृतिशास्त्र है। इतिहास पुराणादि शास्त्र भी स्मृतिशास्त्र के अन्तर्गत हैं, क्योंकि इतिहासपुराणादि शास्त्रों में भी अध्यात्म अधिदैव और अधिभूत ये तीनों भाव ही वेद के अनुरूप ही पाये जाते हैं और पुराण व इतिहासादि शास्त्रोंकी समाधिभाषा, लौकिकभाषा और परकीयभाषा वेद के अनुकरण पर ही महर्षियोंने प्रकाशित की हैं। उनके लक्षण ये हैं:—

"समाधिभाषा प्रथमा लौकिकीति परा मता।
तृतीया परकीयेति शास्त्रभाषा त्रिधा मता॥
गुप्तमेतद्रहस्यं वै भाषातत्त्वं महर्षयः।
सम्यग् ज्ञात्वा प्रवर्त्तध्वं शास्त्रपाठेषु संयताः॥
समाधिभाषा जीवानां योगबुद्धिप्रदायिका।
नयते नितरामेतान् परमामृतमव्ययम्॥
सुरम्या लौकिकी भाषा लोकबुद्धिप्रसाधिका।
परमानन्दभोगान्सा प्रदत्ते नाऽत्र संशयः॥
परकीया तथा भाषा शास्त्रोक्ता पापनाशिनी।
जीवान्सा पुण्यलोकानां कुरुते ह्यधिकारिणः॥

(इति भरद्वाज-संहितायाम्)

पुराणकी भाषा तीन प्रकार की है। प्रथम समाधिभाषा, द्वितीय लौकिक भाषा और तृतीय परकीयभाषा। इन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीनों भाषाओं का रहस्य जानकरके शास्त्रपाठ में प्रवृत्त होना चाहिये। समाधिभाषा के द्वारा योगयुक्त बुद्धि का उदय होता है जिससे जीवों को परमामृतरूपी मुक्तिपद की प्राप्ति होती है। लौकिकभाषा रुचिकर और साधारण बुद्धिगम्य है उसके द्वारा भाषा का सौन्दर्य्य लाभ और साथ ही साथ परमानन्द की प्राप्ति होती है। और परकीय भाषा पाप के नाश करनेवाली है उसके द्वारा जीव पुण्य लोक के अधिकारी होते हैं। ये तीनोंही भाषा वेदार्थ-प्रतिपादिका होने के कारण इन तीनों की ही स्मृतिसंज्ञा होसक्ती है। श्रीगीताजी यद्यपि समाधिभाषा से पूर्ण है परन्तु कहीं कहीं उसमें लौकिकभाषा और परकीयभाषा का भी अंश देखा जाता है।

कर्म्म उपासना और ज्ञान, एकाधार में इन तीनों से पूर्ण ग्रन्थ श्रीगीताजी के अनुरूप और कोई भी देखने में नहीं आता है। वेद के कर्मकाण्ड का प्रतिपादक महर्षि जैमिनी भरद्वाजादिकृत कर्म्म मीमांसादर्शन, वेद के उपासनाकाण्ड के विज्ञान का प्रतिपादक महर्षि अङ्गिरा शाण्डिल्यादिकृत दैवीमीमांसा दर्शन और वेद के ज्ञानकाण्ड का प्रतिपादक महर्षि व्यासकृत ब्रह्ममीमांसादर्शन इन तीनों के प्रधान प्रधान रहस्य सबही श्रीगीताजी में पाये जाते हैं। श्रीगीताजी के १८ अध्यायों में से प्रथम छः अध्याय कर्मकाण्ड के रहस्य के प्रतिपादक हैं। दूसरे छः अध्याय उपासना और भक्तिकाण्ड के रहस्य प्रतिपादक हैं।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

और अन्तिम छः अध्याय ज्ञानकाण्ड के विज्ञान के प्रतिपादक हैं। कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड में विरोध होने के कारण एवं उपासना व भक्तिद्वारा दोनों अधिकार की समता होने से भक्ति और उपासना का वर्णन मध्य में किया गया है। यही सब गीताजी का अलौकिकत्व है।

श्रीगीताजी में त्रिगुणमय सब अधिकार पाये जाते हैं। उसमें ब्रह्मोपासना, सगुणोपासना, अवतारोपासना और यहांतक कि भूतप्रेतादि—उपासनारूप निम्नकोटि की उपासना के यथायोग्य अधिकार का रहस्य वर्णित होने से वह पूर्ण विज्ञानयुक्त है। आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी यह चारों प्रकार के भक्तवृन्दही श्रीगीताजी के श्रवण मनन द्वारा समानरूप से कल्याण प्राप्त करसक्ते हैं। नामरूपात्मक मन्त्रयोग, स्थूलशरीर सम्बन्धीय साधनप्रधान हठयोग, समष्टि व्यष्टि सम्बन्धयुक्त लययोग, और आत्मज्ञान प्रधान राजयोग, इन चारों प्रकार के ही योगियों के लिये श्रीगीताजी अति सहायक हैं। श्रीगीताजी सब प्रकार के कर्म्मी, सब प्रकार के उपासक और सब प्रकार के ज्ञानियों के लिये समानरूप से हितकर हैं। यही श्रीगीताजी का परम महत्त्व है।

धर्म्म का लक्षण वर्णन करते समय महर्षि कणाद ने कहा है:—

"यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्म्मः।"

महर्षि भरद्वाज ने कहा है:—

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

"धारणाद्धर्म्मः।"

"अभ्युदयकरः सत्त्वप्राधान्यात्।"

"कर्म्मावसाने निःश्रेयसकरः शक्तिमत्त्वात्।"

महर्षि अङ्गिराजी ने कहा है:—

"येनैतद्धार्यते स धर्म्मः।"

"मुक्त्युन्मुखकरः सत्त्वप्रधानत्वात्।" इत्यादि।

जिससे उन्नति और मुक्ति होवे उसको धर्म्म कहते हैं। इस संसार को धारण करता है इसीलिये धर्म नाम है। धर्म में सत्त्वगुण की प्रधानता है इसीलिये वह उन्नतिकर है। धर्म में पूरी शक्ति विद्यमान है इस कारण कर्म्म के अवसान में धर्म के द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इस विश्व को जिसने धारण कररक्खा है वह धर्म्म है। धर्म्म में सत्त्वगुण की प्रधानता रहने के कारण वह मुक्ति देने वाला है। तात्पर्य यही है कि साधारण धर्म्म सर्वव्यापक और सर्वलोक हितकर है। धर्म्म के सत्त्वगुणवर्द्धक होने के कारण शारीरिक वाचनिक और मानसिक इन सब क्रियाओं के साथ उसका सम्बन्ध है। इहलौकिक अभ्युदय, पारलौकिक अभ्युदय और निःश्रेयस मुक्ति के साथ सम्बन्ध युक्त होने के कारण धर्म्म सब श्रेणी के मनुष्यों का सहायक है। अन्यान्य शास्त्रों में अधिकार भेद होने के कारण, उनमें विशेष धर्म्म का बहुधा वर्णन होने से, वे शास्त्र विशेष विशेष अधिकारी के लियेही अधिक फलप्रद हैं; परन्तु श्रीगीताजी का एक प्रधान महत्त्व यह है कि वह साधारण धर्म्म के

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विज्ञान से पूर्ण होने के कारण सर्वलोक हितकर है। पृथिवी भर के सब मनुष्य आत्मोन्नति के विचार से उसका अध्ययन करने पर अपने अपने अधिकार के अनुसार अवश्य उन्नति लाभ करेंगे।

ज्ञान दो प्रकार का है। यथाः—तटस्थज्ञान और स्वरूपज्ञान। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेयरूपी त्रिपुटी जहां है उसको तटस्थज्ञान कहते हैं, और जहां तीनों का लय स्वस्वरूप में होजाता है उसको स्वरूपज्ञान कहते हैं। सांख्य प्रतिपाद्य ज्ञान तटस्थ है और वेदान्तप्रतिपाद्य ज्ञान का लक्ष्य स्वरूप ज्ञान है। इन दोनों का यथावत् और यथाधिकार वर्णन श्रीगीताजी में पाया जाता है। श्रीगीताजी के प्रायः प्रत्येक श्लोक में समाधिभाषा की पूर्णता पाई जाती है इसीकारण अन्तर्मुखयोगिगण श्रीगीताजी के सब स्थलों में अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावों को अर्थानुगमन पूर्वक प्राप्त किया करते हैं। आत्मनिष्ठ योगिगण सृष्टि के प्रत्येक स्थान में त्रिविधभावों का दर्शन करसक्ते हैं। उदाहरण स्थलपर कहसक्ते हैं कि भोजनरूप एक सामान्य क्रिया में जब कामना का त्याग किया जाय और यह सोचा जाय कि भोजन के द्वारा क्षुधा निवृत्ति और बलकी प्राप्ति होकर वह भोजन कर्म्मयोग के साधन में सहायक होता है, तो यही अधिभूत भाव है; इसी से अधिभूत शुद्धि होगी और यही कर्मयोग होगा। जब यह धारणा की जाय कि इष्टदेव की कृपाहीसे यह भोजन प्राप्तहुआ है और उनको निवेदन हो जाने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह उनका प्रसादरूप है, इसप्रकार से भोग भाव को दूर करके भक्तिभावसम्मित जो भाव है वही अधिदैवभाव है; और उसीके द्वारा उपासना-बुद्धि की दृढ़ता और अधि दैवशुद्धि होती है। इसीतरह जब भोजन का स्वरूप, भोजन के साथ शरीर का सम्बन्ध और आत्मा के साथ शरीर व भोजन का सम्बन्ध, इत्यादि भावों से युक्त अन्तःकरण होवे वही ज्ञानाधिकार और आध्यात्मिकभाव है; उसी से आध्यात्मिक शुद्धि होती है। श्रीगीताजी के प्रत्येक उपदेश समाधिभाषा से पूर्ण होने के कारण त्रिभावों से पूर्ण हैं। सप्तज्ञानभूमिमय सप्तदर्शन विज्ञान से पूर्ण श्री गीताजी के अष्टादश अध्यायों में से पहले छः अध्यायों में कर्म का स्वरूप और कर्म का त्याग वर्णन करते हुए "तत्त्वमसि" महावाक्य के त्वंपदार्थ की मीमांसा कीगई है। दूसरे छः अध्यायों में भगवद्भक्ति निष्ठावर्णन और उपासना रहस्य का कथन करते हुए तत्पदार्थ का निर्णय किया गया है। और अन्तिम छः अध्यायों में ज्ञानकाण्ड का स्वरूप वर्णन करते हुए तत्पदार्थ और त्वंपदार्थ का ऐक्य सिद्ध करके महावाक्य की सार्थकता की गई है। इस प्रकार गीताजी का महात्म्य जितना विचार किया जाय उतनाही पूर्णरूप में दिखाई देगा॥ इति शम्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ध्यानम् ।

पार्थाय प्रतिबोधितां भगवता
नारायणेन स्वयम् ,
व्यासेन ग्रथितां पुराणमुनिना
मध्ये महाभारते ।
अद्वैताऽमृतवर्षिणीं भगवती
मष्टादशाऽध्यायिनीम् ,
अम्ब त्वामनुसन्दधामि भगवद्-
गीते भवद्वेषिणीम् ॥ १ ॥
नमोऽस्तुते व्यास विशालबुद्धे,
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः,
प्रज्वालितो ज्ञानमयप्रदीपः ॥ २ ॥
भीष्मद्रोणतटा जयद्रथजला
गान्धारनीलोत्पला,
शल्यग्राहवती कृपेण वहनी
कर्णेन वेलाकुला ।
अश्वत्थामविकर्णघोरमकरा
दुर्योधनावर्त्तिनी,
सोत्तीर्णा खलु पाण्डवै रणनदी
कैवर्त्तकः केशवः ॥ ३ ॥
यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुद्रमरुतः
स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवैः,
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदै
र्गायन्ति यं सामगाः ।
ध्यानावस्थित तद्गतेन मनसा
पश्यन्ति यं योगिनो,
यस्याऽन्तं न विदुः सुरासुरगणा
देवाय तस्मै नमः ॥ ४ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ तत्सत् ।

श्रीमद्भगवद्गीता ।

प्रथमोऽध्यायः ।

धृतराष्ट्र उवाच ।

धर्म्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥

अन्वयः—धृतराष्ट्रः उवाच। भो सञ्जय! धर्म्मक्षेत्रे (धर्म्मभूमौ) कुरुक्षेत्रे मामकाः (मदीयाः, मत्पुत्राः दुर्योधनादयः) पाण्डवाश्च (पाण्डुपुत्रा युधिष्ठिरादयश्च) युयुत्सवः (योद्धुमिच्छन्तः) समवेताः (मिलिताः सन्तः) किं अकुर्वत (कृतवन्तः) ॥ १ ॥

अनुवाद—राजा धृतराष्ट्र ने पूछा हे सञ्जय धर्म्मक्षेत्ररूप कुरुक्षेत्र में मेरे पुत्रगण और पाण्डुपुत्रगण युद्ध करने की इच्छा से एकत्रित होकर क्या कर रहे हैं ॥ १ ॥

भाष्य—वेदों के तीनप्रकार की श्रुतियों के अनुसार वेद सम्मत पुराणादि शास्त्रों में तीनप्रकार की भाषा व्यवहृत हुई है । उन तीनों भाषाओं का नाम समाधिभाषा, परकीयभाषा और लौकिकभाषा है । समाधिबुद्धि द्वारा जानेहुए विषय जिस भाषा के द्वारा प्रकाशित हों उसको समाधिभाषा कहते हैं । यथा—लिङ्गपुराण में जो ज्योतिर्मय लिङ्ग का वर्णन है वह समाधिभाषा है । अनादि अनन्त

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चिन्मय ब्रह्मसत्ताही शिवलिङ्गरूप से वर्णित है। उस लिङ्ग के अनादि अनन्तत्व और उसके महत्त्वप्रकाशार्थ उक्त समाधिगम्य भाव को जब लौकिक रीति से ब्रह्मा और विष्णु के विवाद प्रसंग से जहां समझाया गया है वही लौकिक भाषा है। और शिवलिङ्ग-माहात्म्य के समझाने के अर्थ और जिज्ञासु के चित्त में उसकी दृढ़ता स्थापन के निमित्त जो शैलादि गाथाओं के द्वारा वर्णन किया गया है ऐसी गाथाएँ परकीयभाषा कहाती हैं। इन तीनों भाषाओं के विना समझे पुराणादि शास्त्रों का यथार्थ तात्पर्य्य कदापि समझने में नहीं आसक्ता है।

श्रीगीताजी के अध्यात्मस्वरूप के अनुसार यह श्लोक लौकिकभाषा है। तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य शरीररूपी धर्म-क्षेत्र में सदसद्विवेकरूपी तत्त्वज्ञान का उपदेश जीव को कूटस्थ चैतन्य की सहायता से नित्य प्राप्त होसक्ता है। उद्भिज स्वेदज आदि जीव-शरीरमात्रही कर्म्मबीज के अङ्कुरोत्पत्ति के विचार से क्षेत्र नाम से कहे जासक्ते हैं। परन्तु धर्माधर्म पाप पुण्य आदि का सम्बन्ध केवल मनुष्य शरीर के साथ है। मनुष्य शरीर में ही धर्म्म और अधर्म्म की प्राप्ति होसक्ती है। मनुष्यही धर्म्मोन्नति द्वारा अभ्युदय और निःश्रेयस को प्राप्त करता है इस कारण मनुष्य शरीर ही धर्म्मक्षेत्र है। यदि साधक अध्यात्म लक्ष्ययुक्त योगी होवे तो विवेकज्ञानरूपी सञ्जय की सहायता से कूटस्थ चैतन्य श्रीभगवान् के उपदेशरूपी गीतोपनिषद् की प्राप्ति उसको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नित्य होसक्ती है। उस समय स्वाभाविक कर्म्मजनित मुक्ति के हेतुरूपी निवृत्तिकारी वृत्तियों और अस्वाभाविक कर्म्मजनित बन्धन के हेतुरूपी मन की मलिन वृत्तियों के युद्ध का स्वरूप और उसका परिणाम योगी साधक को विदित हुआ करता है। अध्यात्मतत्त्वज्ञ योगी के अन्तःकरण में जब श्रीगीताजी का अध्यात्मस्वरूप प्रश्नोत्तरद्वारा स्वतः ही उदय होने लगता है तबही वह योगी राजयोगी कहलाते हैं।

श्रीगीताजी के अधिदैवस्वरूप के अनुसार यह श्लोक परकीयभाषा है। देवताओं के अवतार और असुरों के अवतार इन दोनों का घोर युद्ध महाभारत का युद्ध है। कलि का प्रारम्भ होने से इस युद्ध की घोरता कुछ बढ़गईथी क्योंकि मोह प्राप्त होकर देवताओं के कुछ अवतार भीष्मादि ने असुरों का पक्ष लेलिया था। इस घोर देवासुरसंग्राम का वर्णन महाभारत में है। इस महायुद्ध के फल से ही घोर स्वार्थपर और पापी राजाओं का नाश होकर संसार में सनातन धर्म की पुनः प्रतिष्ठा स्थापित हुई थी। यदि यह महायुद्ध न होकर आसुरी शक्तियों का दलन न होता तो बहुत शीघ्रही संसार से सनातनधर्म का बीज तक नाश होजाता। रोगी में जब घोर त्रिदोष होजाता है उस समय विष प्रयोग की आवश्यकता होती है। मनुष्यजीवन नाशकारी विषही उस समय अमृतरूप होकर त्रिदोष का नाश करके मनुष्य को जीवनदान देता है। उसी प्रकार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आसुरी प्रजा का पाप और बल जब असाधारणरूप से बढ़ जाता है तबही श्रीभगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, और इसी प्रकार से पृथिवी के भार को कम करके धार्मिकों की सहायता करते हुए धर्मबीज की रक्षा किया करते हैं। महाभारतयुद्धरूपी देवासुरसंग्राम का स्वरूप और धार्मिकों के लिये श्रीगीतोपनिषद्रूपी अलौकिक उपदेश आदि को ज्ञान जगत् में प्रकाशित करने के लिये ऋषिकृपाप्राप्त सञ्जय का जन्म हुआ था, क्योंकि महर्षिगण जगत् में ज्ञान के प्रकाशक हैं; जिनपर ऋषियों की कृपा होती है, जो पुरुष ऋषियों के अंश से जन्म ग्रहण करते हैं वेही ऐसे ज्ञान को प्रकाशित करसक्ते हैं। अपिच ऐसी देवासुरसंग्राम कथा और गीतोपनिषद् जैसे वेदसार के प्रकाश के लिये सञ्जयोपाख्यानरूप से जो गाथा महाभारत में कही गई है वही यह स्वरूप है।

श्रीगीताजी के अधिभूत स्थूल शास्त्रीयस्वरूप के अनुसार इस श्लोक का भाव कुछ औरही है। राजा धृतराष्ट्र अन्ध थे, परन्तु उन्होंने हस्तिनापुर में बैठे हुए ही युद्धका वृत्तान्त जानने के लिये श्रीभगवान् वेदव्यासजी से प्रार्थना की थी। श्रीभगवान् व्यासजी ने तब सञ्जय को ज्ञाननेत्र देकर उपदेश किया कि राजा धृतराष्ट्र के पास रहकर कुरुक्षेत्र का वृत्तान्त सुनाते रहो। इसी कारण राजा धृतराष्ट्र सञ्जय से प्रश्न करते गये और सञ्जय उत्तर देते गये। इसी प्रश्नोत्तर के प्रारम्भ में कहा है "किमकुर्वत" अर्थात् क्या

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करते हैं। अब यहां यह प्रश्न उठसक्ता है कि जब पाण्डव-गण जतुगृहदाह वनवासादि बहु प्रकार के अत्याचारों से पीड़ित होकर कौरवों को नाश करने के लिये दृढ़प्रतिज्ञा करचुके थे, जब श्रीमान् विदुर व श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के सन्धिस्थापन करने के लिये बहुत से यत्न करने पर भी दुर्योधन ने कहा था कि विना युद्ध के एक सूई के अग्रभाग के बराबर भी भूमि नहीं दूँगा, तौ भी ऐसा प्रश्न क्यों किया गया। ऐसी निश्चित दशा में यह प्रश्न होना उचित था कि युद्ध कैसा होरहा है। इस शङ्का का समाधान यह है कि कुरुक्षेत्र एक साधारण स्थान नहीं है, कुरु-क्षेत्र एक पुण्यतीर्थ है इसीलिये कुरुक्षेत्र शब्द से प्रथम धर्मक्षेत्र रूप गुणवाचक शब्द कहागया है। इस गुणवाचक धर्मक्षेत्र शब्द सेही धृतराष्ट्र के प्रश्न का गभीर तात्पर्य्य निश्चय किया जा सक्ता है। जिस स्थान पर जाने से धर्म-बुद्धिहीन मनुष्य के हृदय में धर्मभाव का उदय होता है, अप्रकाशित धर्म अङ्कुरित होता है, जहां केवल धर्मकार्य्यों का ही अनुष्ठान होता रहता है, उस स्थान की ऐसी स्वाभाविक पवित्रता होती है कि जिसके कारण तमोगुणी मनुष्य में भी सत्त्वगुण का विकाश होजाता है उसी स्थान को धर्मक्षेत्र कहते हैं। कुरुक्षेत्र वैसाही एक प्रधान धर्म्मक्षेत्र है। यथाः—

"यदनु कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनं॥" इति जाबालोपनिषद्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुरुक्षेत्र देवताओं का देवयजनस्वरूप एवं प्राणियों के लिये ब्रह्म व मोक्षलाभ का निकेतनस्वरूप है। शतपथ ब्राह्मण में भी कुरुक्षेत्र की ऐसीही प्रशंसा है यदिच पाण्डव और कौरवों ने प्रथम से ही युद्ध करना निश्चय किया था, परन्तु राजा धृतराष्ट्र को धर्मक्षेत्र की महिमा स्मरण होने के कारण यह संशय हुआ कि स्थानप्रभाव से दोनों पक्ष के अन्तःकरण में सत्त्वगुण का उदय होना सम्भव है। यदि ऐसा हुआ हो तो लोकहानि कर युद्ध के बदले परस्पर में मित्रता और सन्धि भी होसक्ती है। इसी विचार के अनुसार धृतराष्ट्र के प्रश्न का आशय यह था कि उभय पक्ष में सन्धि हुई अथवा युद्ध का प्रारम्भ हुआ। धृतराष्ट्र को ऐसी भी आशा थी कि धर्मात्मा पाण्डवगण धर्मक्षेत्र के प्रभाव से पूर्व की अपेक्षा अधिक सात्त्विकभाव युक्त होकर जीवहत्यारूप कार्य से निवृत्त हुए होंगे। अथवा दुरात्मा दुर्योधन ने धर्मक्षेत्र की महिमा के प्रभाव से अपनी दुर्बुद्धि को छोड़ते हुए पाण्डवों का धर्मतः प्राप्य अधिकार उनको दिया होगा। पुत्र स्नेह के कारण धृतराष्ट्र का "मामकाः किमकुर्वत" यह मुख्य प्रश्न था और च पद के द्वारा "पाण्डवाः किमकुर्वत" इस वाक्य से गौणभाव को उसने लक्ष्य किया था। दुर्योधनादि को लक्ष्य करके "मामकाः" पद और युधिष्ठिरादि भ्रातृपुत्रों के लिये "पाण्डवाः" शब्द का व्यवहार होने से धृतराष्ट्र की अपने पुत्रों से आत्मीयता और पाण्डवों से अनात्मीयता अथवा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शत्रुबुद्धि का परिचय सूचित होता है । अपने पुत्रगण धर्मक्षेत्र के प्रभाव से अपनी अपनी दुष्क्रियाओं के कारण पश्चात्तापयुक्त होकर या तो बहुत अनुतप्त हुए होंगे, अथवा उन्होंने राज्य छोड़ कर पराजय स्वीकार करलिया होगा ऐसी चिन्ताही धृतराष्ट्र के प्रश्न का मूल कारण है।

अपने पास रहने वाले किसी से यदि कुछ पूछना होता है तो उस समय उसका नाम लेनेकी कोई आवश्यकता नहीं रहती है, परन्तु व्याकुल चित्त राजा धृतराष्ट्र ने पक्षपात शून्य होकर पूछने की उत्तेजना का भान दिखाने के लक्ष्य से बड़ी मर्यादा के साथ "हे सञ्जय" (जिसने रागद्वेष को जय किया है वही सञ्जय है) ऐसा प्रशंसा सूचक सम्बोधन पद बोला था। यही इस श्लोक के पदों का तात्पर्य है॥१॥

सञ्जय उवाच ।

दृष्ट्वातु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्य्यमुपसङ्गम्य राजावचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

(अन्वयः) सञ्जयः उवाच—तदा राजा दुर्योधनः पाण्डवानीकं (पाण्डवसैन्यं) व्यूढं (व्यूहरचनया अधिष्ठितं) दृष्ट्वा तु आचार्य्यं (द्रोणं) उपसङ्गम्य (समीपं गत्वा) वचनं अब्रवीत् (वक्ष्यमाणं वाक्यं उवाच) ॥ २ ॥

(भाषानुवाद) सञ्जय ने कहा—उस समय पाण्डवपक्षीय सेना को व्यूह रचना के द्वारा अवस्थित देखकर राजा दुर्योधन आचार्य द्रोणजी के पास जाकर कहने लगे ॥ २ ॥

IGNCA
Acc. No.

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(भाषाभाष्य) "धर्म्मक्षेत्र की विशुद्ध शक्ति के प्रभाव से अच्छी बुद्धि प्राप्त होकर दुर्योधन अनुतप्त हुए होंगे" धृतराष्ट्र को जो ऐसी शङ्का हुई थी उसी के निराकरणार्थ सञ्जय ने प्रथम ही पाण्डवों की बात नहीं कहकर दुर्योधन की दुर्बुद्धिता और कार्याबली की व्याख्या करना प्रारम्भ किया। "राजा" शब्द के द्वारा दुर्योधन के अधिनायकत्व तथा कर्तृत्व का और उसने जो इससमय राजनैतिक कौशल अवलम्बन किया था उसका परिचय दिया गया है। "उपसङ्गम्य" अर्थात् पास जाकर इस पद के द्वारा यह भाव प्रकाशित होता है कि यदि दूसरे किसी के पास जाते तो उससे उनकी पद मर्यादा में हानि पहुंचती और साथ ही साथ लोग समझते कि दुर्योधन भयभीत हुए हैं। परन्तु द्रोणाचार्य के पास जाने से लोगों को ऐसे सन्देह का अवसर नहीं मिला क्योंकि अपने आचार्य के पास शिष्य सब समय ही जासकता है। "अब्रवीत्" अर्थात् बोले इस शब्द के प्रयोग से ही दुर्योधन का आचार्य के पास कहना निश्चित होता; तथापि "वचनमब्रवीत्" अर्थात् वाक्य बोले, इस वचन अर्थात् वाक्य शब्द के द्वारा यह भाव सूचित होता है कि कुछ साधारण बात नहीं बोले वरञ्च कुछ विशेष बात बोले॥२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य्य महतीं चमूम्।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता॥३॥

(अन्वयः) हे आचार्य्य! तव शिष्येण धीमता द्रुपदपुत्रेण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(धृष्टद्युम्नेन) व्यूढां पाण्डुपुत्राणां एतां महतीं (विततां) चमूं (सेनां) पश्य ॥ ३ ॥

(भाषानुवाद) हे आचार्य्य! आपके शिष्य धीमान् द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न के द्वारा व्यूह रचना से सुरक्षित पाण्डवों की इस महती सेना को देखिये॥३॥

(भाषाभाष्य) पाण्डवगण द्रोणाचार्य के बड़े प्रिय शिष्य थे और अर्जुन तो सब से ही विशेष प्रिय थे। युद्ध के समय उस स्नेह के कारण द्रोणाचार्य युद्ध छोड़ देवें अथवा युद्ध में शिथिलता करें इसी भय से दुर्योधन पहिले से ही उसका उपाय करने की इच्छा से इस चातुरी के साथ बोलने लगे कि जिससे आचार्य्य के हृदय में पाण्डवों के ओर की अवज्ञा से उत्पन्न क्रोध का उदय हो। अतएव मूल के वाक्य द्वारा राजा दुर्योधन आचार्य्य को सूचित करते हैं कि देखिये आप जैसे महानुभाव को अवज्ञा करके आपके शिष्य होने पर भी कैसीं धृष्टता के साथ अनेक अक्षौहिणी सेना को लेकर सामने खड़े हैं। केवल इतना ही नहीं है आपका जो चिर शत्रु द्रुपद राजा है उसी का पुत्र धृष्टद्युम्न जिसे कि आपने कृपापूर्वक धनुर्विद्या सिखाई वही आज गुरुद्रोही होकर आपके साथ लड़ाई करने के लिये पाण्डवसेना के सञ्चालकरूप से आपके सामने उपस्थित है। इस श्लोक में धृष्टद्युम्न न कहकर द्रुपदपुत्र शब्द का प्रयोग करने से यह तात्पर्य है कि राजा द्रुपद आचार्य्य के पूर्व शत्रु थे इस कारण पूर्वशत्रुता का स्मरण दिलाने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अधिक क्रोध का होना सम्भव है। इस प्रकार "द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण" इस वाक्य से पूर्व शत्रुता की उत्तेजना और गुरुद्रोही शिष्यों को समुचित दण्ड देना चाहिये, इसके लिये उद्दीपना की है; तथा बहु अक्षौहिणी सेना लेकर शत्रु को सुसज्जित होकर सामने देखने से आचार्य को अपने जय के विषय में सन्देह हो इससे उस सन्देह के दूर करने के अर्थ इसमें शिष्य शब्द का भी प्रयोग किया गया है जिससे आचार्य को यह लक्ष्य कराया गया है कि वे बलशाली होने पर भी आपके ही शिष्य हैं अर्थात् आप से छोटे ही हैं। साथ ही साथ "धीमता" इस शब्द से यह भी सूचित कर दिया है कि शिष्यगण धीमान् हैं अतः वे उपेक्षा करने के पात्र नहीं हैं; अर्थात् आप को सावधान होकर युद्ध करना उचित है ॥ ३ ॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥

(अन्वयः) अत्र (सेनायां) शूराः महेष्वासाः (महाधनुर्द्धराः) युधि (युद्धे) भीमार्जुनसमाः युयुधानः (सात्यकिः), विराटः च, महारथः द्रुपदः च, धृष्टकेतुः, चेकितानः, वीर्यवान् काशिराजः च, पुरुजित्, कुन्तिभोजः च, नरपुङ्गवः (नरश्रेष्ठः)

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शैब्यः च, विक्रान्तः युधामन्युः च, वीर्यवान् उत्तमौजाः च, सौभद्रः (अभिमन्युः), द्रौपदेयाः च (द्रौपदीतनयाः प्रतिविन्ध्यादयश्च) (एते) सर्वे एव महारथाः (सन्ति) ॥ ४, ५, ६ ॥

(भाषानुवाद) इस सेना में भीमार्जुन के समान महाबलशाली और महाधनुर्द्धर युयुधान (सात्यकि), विराट, महारथ द्रुपद, धृष्टकेतु, चेकितान, वीर्यवान् काशिराज, पुरुजित्, कुन्तिभोज, नरश्रेष्ठ शैब्य, विक्रमशाली युधामन्यु, वीर्यवान् उत्तमौजा, सुभद्रा-तनय अभिमन्यु और द्रौपदी के प्रतिविन्ध्यादि पांचपुत्र ये सब महारथ हैं॥ ४, ५, ६ ॥

(भाषाभाष्य) केवलमात्र धृष्टद्युम्न का नाम लेने से यदि द्रोणाचार्य के चित्त में ऐसी भावना हो कि ऐसे एकमात्र वीर से दुर्योधन को ऐसा भय क्यों है इसीलिये दुर्योधन कहते हैं, कि हे आचार्य ! एकमात्र धृष्टद्युम्न ही नहीं है परन्तु विश्वविजयी भीम और अर्जुन के तुल्य धनुर्द्धारी एवं प्रबल पराक्रमी और भी बहुत से वीर हैं जो कि कदापि उपेक्षा के योग्य नहीं हैं, विशेषण और नामों के द्वारा ही उन सबों के गुण और गौरव की व्याख्या करता हूँ। "महेष्वासाः" (महाधनुर्द्धारी) अर्थात् ऐसे अस्त्र को धारणकरने वाले हैं कि जिसके द्वारा दूर से ही शत्रुसैन्य को विध्वस्त किया जासक्ता है। महाधनुर्द्धारी होने पर युद्धकौशल नहीं जानते हों तो धनुर्द्धारण ही वृथा है इसीलिये कहते हैं कि "भीमार्जुनसमाः" अर्थात्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भीमार्जुन के सदृश बाणयुद्ध में विशेष निपुण हैं। बाण-युद्ध-निपुणता और महाधनुर्द्धारी होने पर भी शूरत्व की परम आवश्यकता होती है अतः "शूराः" यह शब्द देकर वक्ष्यमाण वीरों का शूर होना भी जतलाया गया है। "वीर्य्यवान्," "नरपुङ्गव" और "विक्रान्त" इन विशेषणों के द्वारा उन वीरों के वीरत्व के विषय में और भी विशेषता सूचित की है और "च" शब्द के द्वारा घटोत्कचादि वीरों का भी ग्रहण किया गया है। उक्त गुणों के सिवाय उन सब वीरगणों में से कोई भी अर्द्धरथी अथवा एकरथी नहीं है परन्तु सबही महारथी हैं क्योंकि महारथी का लक्षण शास्त्रों में निम्न लिखित कहा गया है तल्लक्षण-विशिष्ट वे हैं। यथा:—

"एकादशसहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम्।
शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च महारथ इति स्मृतः॥"

जो शस्त्रशास्त्र में बहुत कुशल हैं और अकेले ही ग्यारह हज़ार धनुर्द्धारियों के साथ युद्ध करने में समर्थ होते हैं वे ही महारथी हैं।

इन तीन श्लोकों के द्वारा पाण्डवपक्ष की सेना के प्रधान प्रधान योद्धाओं के मुख्य मुख्य गुण वर्णन करने के अतिरिक्त, दुर्योधन उन सब का महाधनुर्द्धारी होना, शूर होना, बाणयुद्ध में निपुण होना और महारथी होना सिद्ध करता हुआ उन में असीम वीरत्व होना प्रतिपादन कर रहा है॥ ४, ५, ६॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम।
नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते॥७॥

(अन्वयः) हे द्विजोत्तम! अस्माकं तु ये विशिष्टाः (प्रधानाः) मम सैन्यस्य नायकाः (नेतारः) तान् निबोध (जानीहि) ते (तव) संज्ञार्थं (सम्यक् बोधार्थं) तान् ब्रवीमि (कथयामि) ॥७॥

(भाषानुवाद) हमारे पक्ष में जो प्रधान प्रधान और मेरे सेनानायक हैं उन सबों को देखिये, आप के विदितार्थ उन सबों का नाम लेता हूँ सो सुनिये॥७॥

(भाषाभाष्य) पाण्डवपक्ष के महावीरों के नाम सुन कर यदि द्रोणाचार्य्य के मन में ऐसी भावना उत्पन्न हो कि पाण्डवों के उन वीरों को देखकर दुर्योधन भयभीत हुए हैं, और साथ ही साथ कहदेवें कि तुम इन वीरों से यदि युद्ध करने में अपने को असमर्थ समझते हो तो पाण्डवों से सन्धि क्यों नहीं कर लेते; इसी आशङ्का को दूर करने के अर्थ दुर्योधन अपने पक्ष के शूरवीरों के नाम लेने का उपक्रम करते हुए आचार्य्य के पास युद्ध करने के लिये अपना उत्साह प्रकट कररहा है। उक्त आशङ्का के कारण प्रथम से ही आचार्य्य को उत्साहित करने की इच्छा से "द्विजोत्तम" अर्थात् द्विजों में श्रेष्ठ इस शब्द के द्वारा दुर्योधनने उनकी स्तुति की, और अपने पक्ष के सब से "विशिष्टाः" अर्थात् श्रेष्ठ पुरुषों का एवं "सैन्यस्य नायकाः" अर्थात् अपने पक्ष की सेना में जो लोग नेता हैं उन सबों के नाम सुनाने का उपक्रम करके उनको युद्ध के लिये उत्साहित किया है। तात्पर्य्य यह था कि परपक्ष

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

में जैसे बड़े बड़े वीर हैं ऐसे स्वपक्ष में भी तो वक्ष्यमाण बड़े बड़े वीर तथा श्रेष्ठ पुरुषगण विद्यमान हैं, सुतरां हमें इस युद्ध से डर क्या है, हमें उत्साहपूर्वक इन वीरों के साथ युद्ध करना चाहिये । इस प्रकार आचार्य्य के चित्त में निरुत्साहजनक दूसरी भावना के उत्पन्न होने का अवसर नहीं दियागया है । "अस्माकं तु" इसके "तु" शब्द से प्रकाश होता है कि दुर्योधन के चित्त में वास्तव में भय का सञ्चार हुआ था, परन्तु दुराग्रह के कारण इस युद्ध के सिवाय सन्धि आदि और कोई प्रस्ताव सुनना नहीं चाहता था, इसलिये ही दुर्योधन आन्तरिकभय को जो बुद्धिमानों के चित्त में "तु" शब्द द्वारा प्रतिभासित होसक्ता है कौशलपूर्वक छुपाकर बाहर से साहस का भान अन्य शब्दों के द्वारा दिखारहा है ॥ ७ ॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः ।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८ ॥*
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः ।
नाना शस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

(अन्वयः) भवान्, भीष्मः च, कर्णः च, समितिञ्जयः (संग्रामविजयी) कृपः च, अश्वत्थामा, विकर्णः च, सौमदत्तिः (भूरिश्रवाः), जयद्रथः (एते) मदर्थे (मत्प्रयोजनाय) त्यक्तजीविताः (जीवनमपि त्यक्तुमुद्यताः) नाना शस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः (युद्धनिपुणाः) अन्ये च बहवः शूराः (वीराः) सन्ति ॥ ८, ९ ॥

* "जयद्रथ" के स्थान पर कहीं "तथैवच" ऐसा पाठ भी मिलता है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(भाषानुवाद) आप, भीष्म, कर्ण, रणविजयी कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण, भूरिश्रवा, जयद्रथ और नाना प्रकार के शस्त्रप्रहार करनेवाले एवं सब के सब ही रणनिपुण अन्यान्य अनेक वीर मेरे निमित्त जीवन त्याग करने के लिये प्रस्तुत हैं ॥ ८, ९ ॥

(भाषाभाष्य) पूर्व श्लोक में जो विशिष्ट पुरुष तथ नायकों के नाम बतानेका उपक्रम किया गया है इस श्लोक के द्वारा उन सबों के नाम कहरहे हैं। यथाः— विशिष्ट पुरुषों में आप (द्रोणाचार्य), भीष्मदेव, कर्ण और समर-विजयी कृप हैं। ये चार विशिष्ट पुरुष और नायकों में अश्वत्थामा, विकर्ण, भूरिश्रवा और जयद्रथ एवं विविध प्रकार के शस्त्रप्रहरण में निपुण तथा युद्ध में बड़े चतुर ऐसे और भी बहुत से वीर हैं, जो लोग "मदर्थे त्यक्त-जीविताः" अर्थात् मेरे लिये प्राण देने को प्रस्तुत हैं। मुझ से उन लोगों का अत्यधिक प्रेम है इस कारण वे बीर मेरे हितार्थ मृत्युभय से भी पीछे-हटने-वाले नहीं हैं। यहां "अन्ये च" शब्द कहने का तात्पर्य्य यह था कि नायकों में केवल अश्वत्थामादि चारों के नाम सुनकर यदि कहें कि "बस तुम्हारे केवलमात्र वही चार नायक हैं" इसी लिये उस प्रश्नके उठने से प्रथम ही कहते हैं कि केवल ये चारही नहीं हैं, परन्तु "अन्ये च बहवः शूराः" शल्य कृतवर्म्मा प्रभृति और भी बहुत से वीर हैं। विशिष्ट पुरुषों में कृप का नाम कर्ण से पीछे लियागया इस कारण कृप

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के अन्तःकरण में जिससे क्रोध का सञ्चार न होनेपावे इसी अभिप्राय को लेकर कृप के नाम के पूर्व प्रशंसा सूचक "समितिञ्जय" अर्थात् समरविजयी ऐसे गुणवाचक शब्द का प्रयोग किया गया है। आचार्य्य को सन्तुष्ट करने के अभिप्राय से चतुर दुर्योधन ने विशिष्ट पु.षों में भीष्म के नाम के पहले आचार्य्य का नाम, और विकर्णादि नायकों के नाम के पहले आचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा का नाम लिया है; क्योंकि प्रशंसित मनुष्यों में यदि कोई सब से प्रथम अपना तथा अपने पुत्र का नाम सुनता है तो उसकी कुछ विशेषरूप से प्रसन्नता होती है ॥ ८, ९॥

अपर्य्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्य्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

(अन्वयः) अस्माकं तत् भीष्माभिरक्षितं (सूक्ष्मबुद्धिना भीष्मेण रक्षितं) बलं (सैन्यं) अपर्य्याप्तं (अनन्तं एकादशाक्षौहिणीपरिमितं तस्मात् विपक्षपरिभवे समर्थमित्यर्थः) एतेषां (पाण्डवानां) तु (पुनः) भीमाभिरक्षितं (भीमेन चपलबुद्धिना परिपालितं) इदं बलं पर्य्याप्तं (परिमितं सप्ताक्षौहिणीमात्रात्मकत्वात् न्यूनं अतः अस्मान् अभिभवितुं असमर्थं) ॥ १० ॥

(भाषानुवाद) भीष्मजी के द्वारा रक्षित हमारे सैन्य अपर्याप्त अर्थात् अनेक अधिक हैं और भीमसेन से रक्षित पाण्डवसैन्य पर्य्याप्त अर्थात् बहुत कम हैं ॥ १० ॥

(भाषाभाष्य) उभय पक्ष में ही बड़े बड़े अस्त्र शस्त्र

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

निपुण और समरचतुर शूरवीर गण विद्यमान हैं, परन्तु आचार्य को उत्साहित करने के लिये दुर्योधन दिखाते हैं कि उभयपक्ष का बल और सैन्यसंख्या समान नहीं है क्योंकि अपने पक्ष में सेना की संख्या अपर्याप्त अर्थात् बहुत (एकादश अक्षौहिणी) और पाण्डवपक्ष में पर्य्याप्त अर्थात् कम (सात अक्षौहिणी मात्र) है। सुतरां पाण्डव पक्ष की अपेक्षा अपने पक्ष में सैन्यसंख्या अधिक है। इस के अतिरिक्त भीष्म जैसे चतुर और तीक्ष्णबुद्धि सेनापति के द्वारा अपने अपर्याप्त सैन्य रक्षित हैं, इसलिये चञ्चल बुद्धि भीमसेन के द्वारा परिचालित पर्य्याप्त अर्थात् कम संख्या की सेना के अपेक्षा मेरा पक्ष प्रबल है;अतः पाण्डवों से युद्ध करने में हमें किसी अवस्था में भी निरुत्साह नहीं होना चाहिये। इस श्लोक में जो "तु" शब्द का प्रयोग किया गया है उसका तात्पर्य यह है कि, यदि आचार्य्य के चित्त में ऐसी शङ्का हो कि कौरव पक्ष में भय के कारण का सर्वथा अभाव होने पर ऐसी वृथा जल्पना की क्या आवश्यकता है, अतः इस तरह की शङ्का के समाधान के लिये "तु" शब्द के प्रयोग द्वारा दुर्योधन विशेष कर्त्तव्य की सूचना कररहा है। वह विशेष कर्त्तव्य क्या है सो आगेके श्लोक में कहा है।

एक अक्षौहिणी सेना में २१८७० हाथी के सवार, २१८७० रथी, ६५६१० घुड़सवार और १०९३५० पदाति (पैदल) सैन्य अर्थात् सब समेत २१८७०० सैन्य रहते

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं । इस गणना के अनुसार दुर्योधन के पक्ष में २४०५७० हाथी के सवार, २४०५७० रथी, ७२१७१० घुड़सवार और १२०२८५० पदाति अर्थात् कुल २४०५७०० सैन्य थे । और पाण्डवपक्ष में १५३०९० हाथी के सवार, १५३०९० रथी, ४५९२७० घुड़सवार एवं ७६५४५० पदाति अर्थात् कुल १५३०९०० सैन्य थे । इस प्रकार कुरुक्षेत्र के इस महारण में उभयपक्ष के कुल ३९३६६०० सैन्य एकत्रित हुए थे ॥ १० ॥

अयनेषु च सर्व्वेषु यथाभागमवस्थिताः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

(अन्वयः) सर्वेषु अयनेषु (व्यूहप्रवेशमार्गेषु) यथाभागं (विभक्ताः निर्दिष्टां स्वां स्वां युद्धभूमिं अपरित्यज्य) अवस्थिताः (सन्तः) सर्वे एव भवन्तः भीष्मं एव अभिरक्षन्तु (यथा अन्यैः युध्यमानः कैश्चित् पृष्ठतः न हन्यते तथा रक्षन्तु) ॥ ११ ॥

(भाषानुवाद) आप सबही अपने अपने विभाग के अनुसार व्यूहप्रवेशपथ में अवस्थानपूर्वक भीष्मदेव की रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥

(भाषाभाष्य) इस श्लोक के द्वारा युद्ध के प्रारम्भ में विविध भागों में अवस्थित सैन्यों का कर्त्तव्य निर्देश किया जाता है । युद्धक्षेत्र में वीरता के तारतम्यानुसार भिन्न भिन्न दिशाओं में सैन्यों की अवस्थिति के जो स्थान हैं उनको अयन कहते हैं । सेनापति सकल सैन्यों के नायकरूप से मध्यस्थल पर अवस्थान करते हैं । उस समय सैन्यों का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यह कर्त्तव्य होताहै कि, अपने अपने विभाग की रणभूमि में दृढ़ रहकर सेनापति के आज्ञाधीन रहते हुए युद्ध में निविष्टचित्त सेनापति को चारों ओर से रक्षा करें; क्योंकि युद्धरूप कार्य के सर्वथा सेनापति के ही अधीन होने से उन्हीं की रक्षा से सर्वरक्षा और युद्ध में जयलाभ की सम्भावना रहती है। इसीलिये ही दुर्योधन इस परम कर्त्तव्य को स्मरण कराने के अर्थ आचार्य से उक्त प्रकार कह रहा है ॥ ११ ॥

तस्य सञ्जनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान्॥१२॥

(अन्वयः) प्रतापवान् कुरुवृद्धः पितामहः (भीष्मः) तस्य (दुर्योधनस्य) हर्षं सञ्जनयन् उच्चैः (महान्तं) सिंहनादं विनद्य (कृत्वा) शङ्खं दध्मौ (वादितवान्) ॥ १२ ॥

(भाषानुवाद) प्रतापशाली कुरुवृद्ध पितामह (भीष्मदेव) ने उसके (दुर्योधन) के चित्त में हर्ष उत्पादन करने के निमित्त सिंहनादपूर्वक बहुत ऊंचे स्वर से शङ्ख बजाया ॥ १२ ॥

(भाषाभाष्य) भीष्मदेव ने देखा कि दुर्योधन चित्त से डरता है, परन्तु बाहर से साहस का भान दिखारहा है; अपिच द्रोणाचार्य के मुख से उत्साहव्यञ्जक कोई शब्द निकलता नहीं है, और "भीष्मको ही रक्षा कीजिये" इत्यादि शब्दों के द्वारा उनकी प्रतिष्ठा भी कीगई, इन्हीं कारणों से दुर्योधन के आन्तरिक भय को दूर करके उनको उत्साहित करने के लिये अत्युच्च सिंहनादपूर्वक शङ्ख बजाया। कुरु-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृद्ध इस विशेषण पदके द्वारा भीष्मदेव की प्रवीणता-सुलभ अभिज्ञता का परिचय दियागया है, इसीलिये उस अभिज्ञता के कारण आचार्य की उपेक्षा और दुर्योधन के भयभाव को सम्यक् जानकर उनका सिंहनाद और शङ्ख बजाना सर्वथा समयानुकूल हुआ था इसमें सन्देह नहीं है। पितामह इस विशेषण के द्वारा आचार्य की अपेक्षा कौरवों के साथ भीष्मदेव की आत्मीयता के गुरुत्व का परिचय दियागया है,जिससे आचार्य की उपेक्षा होने पर भी पितामह भीष्मदेव की कदापि नहीं होसक्ती इस भाव का प्रकाश कियागया है। प्रतापवान् इस विशेषण के द्वारा भीष्मदेव का युद्धविजेतृत्वरूप प्रतापशाली होना निर्दिष्ट किया गया है, सो युक्तियुक्तही है क्योंकि भीष्मबध शिखण्डी को आश्रय करकेही हुआ था अन्यथा ऐसे प्रतापशाली योद्धा का बध असम्भव था ॥ १२ ॥

ततः शङ्खाश्च भेर्य्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

(अन्वयः) ततः (भीष्मप्रवृत्त्यनन्तरं) शङ्खाः च भेर्य्यः च पणवानकगोमुखाः (एते वाद्यविशेषाः) सहसा (तत्क्षणात्) एव अभ्यहन्यन्त (वादिताः) सः शब्दः तुमुलः (महान्) अभवत् (अभूत्) ॥ १३ ॥

(भाषानुवाद) अनन्तर शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, गोमुख प्रभृति वाद्य-यन्त्रसमूह बजाये जिस से महान् शब्द हुआ ॥ १३ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(भाषाभाष्य) यह प्रसिद्ध है कि भीष्मदेवकी मृत्यु दूसरे से नहीं होसक्की है क्योंकि वे इच्छामृत्यु हैं; जब वे स्वयं मरने की इच्छा करेंगे तबही उनकी मृत्युहोगी नहीं तो अन्य किसी से उनकी मृत्यु होनी असम्भव है। जब ऐसे मृत्युभयशून्य भीष्मपितामह ने रणोत्साहमें प्रवृत्ति दिलाने के लिये सब से प्रथमही उत्साह दिखाया तब अन्य कौरवगण निर्भय होगये इसीकारण सबों ने उत्साहपूर्वक रणवाद्यों को बजाया। "स शब्दस्तुमुलोऽभवत्" अर्थात् वह शब्द महान् गहन हुआ था, इस वाक्य को कहने का विशेष तात्पर्य यह था कि, यद्यपि कौरवों के रणवाद्यों का शब्द अत्यन्त महान् हुआ था तथापि उस शब्द से पाण्डवगण विचलित नहीं हुए क्योंकि अग्रिम श्लोक से ऐसाही प्रकट कियागया है॥ १३॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

(अन्वयः) ततः श्वेतैः हयैः (अश्वैः) युक्ते महति (अप्रधृष्ये) स्यन्दने (रथे) स्थितौ माधवः (श्रीकृष्णः) पाण्डवः (अर्जुनः) च एव दिव्यौ (अप्राकृतौ) शङ्खौ प्रदध्मतुः (प्रकर्षेण वादितवन्तौ) ॥ १४ ॥

(भाषानुवाद) अनन्तर श्वेतवर्ण के अश्ववाले रथ पर अवस्थित श्रीकृष्ण और अर्जुन ने दिव्यशङ्खों को बजाया ॥ १४ ॥

(भाषाभाष्य) श्वेत अश्वयुक्त रथ के उल्लेख का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तात्पर्य विशेष करके यह है कि यह रथ साधारण रथ नहीं है, साक्षात् अग्निदेव से यह रथ मिला था इसीसे उस रथ पर स्थित वीरों को साधारण शत्रुओं से कुछ भी भय नहीं है। पाण्डवपक्ष में श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन के सब से प्रथम शङ्ख बजाने का कारण यह है कि,धर्मात्मा पाण्डव-गण श्रीकृष्ण महाराज के परामर्श विना कोई कार्य प्रारम्भ नहीं करते थे,और अर्जुन श्रीकृष्णजी के अनुगत एवं प्रिय सखा थे इससे श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन पाण्डवों के कार्यों में प्रधान नायक थे। इसीलिये पाण्डवपक्ष से श्रीकृष्ण महाराज और अर्जुन ने कौरवों की रणाभिलाषा को स्वीकारपूर्वक प्रतियोगिता के लिये प्रथम शङ्खनिनाद किया। कौरवों के शङ्खनिनाद के पश्चात् पाण्डवों के शङ्खनिनाद से यही सूचित होता है कि,पाण्डवगण विद्रोहाचरण के लिये प्रथम प्रवृत्त नहीं हुए थे किन्तु दुष्ट दुर्योधन के पक्षवालोंने ही भारतीय वीरों के शोणित से पृथिवी को कलङ्कित करने का प्रयत्न पहिले किया था; तब अगत्या अपने अधिकार और धर्म्म की रक्षा के लिये पाण्डवों को युद्ध करने के लिये प्रवृत्त होना पड़ा ॥ १४ ॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः॥ १५॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्चमहाबाहुःशङ्खान् दध्मुःपृथक्पृथक् ॥१८॥

(अन्वयः) हृषीकेशः (श्रीकृष्णः) पाञ्चजन्यं, धनञ्जयः (अर्जुनः) देवदत्तं, भीमकर्मा (सर्वलोकभयङ्करकर्मकारी) वृकोदरः (भीमः) महाशङ्खं पौण्ड्रं, कुन्तीपुत्रः राजा युधिष्ठिरः अनन्तविजयं, नकुलः सहदेवः च सुघोषमणिपुष्पकौ (पाञ्चजन्यादीनि मणिपुष्पकान्तानि शङ्खनामानि) दध्मौ । परमेष्वासः (मकृष्टधनुर्धरः) काश्यः च, महारथः शिखण्डी च, धृष्टद्युम्नः, विराटः च-अपराजितः सात्यकिः च, हे पृथिवीपते ! (धृतराष्ट्र !) द्रुपदः, द्रौपदेयाः (द्रौपदीतनयाः) च, महाबाहुः सौभद्रः च, सर्वशः पृथक् पृथक् शङ्खान् दध्मुः ॥ १५, १६, १७, १८ ॥

(भाषानुवाद) श्रीकृष्ण ने पाञ्चजन्य शङ्ख, अर्जुन ने देवदत्तनामक शङ्ख, और भीमकर्मा वृकोदर (भीमसेन) ने पौण्ड्रनामक महाशङ्ख बजाया। कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर ने अनन्तविजयनामक और नकुल ने सुघोषनामक एवं सहदेव ने मणिपुष्पनामक शङ्ख (बजाया), तथा महाधनुर्धर काशिराज, महारथी शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, अजेय सात्यकि, द्रुपद राजा, द्रौपदी के पुत्रगण और महाबाहु सुभद्रातनय अभिमन्यु, हे राजन्! इन लोगों ने पृथक् पृथक् शङ्ख बजाये ॥ १५, १६, १७, १८ ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(भाषाभाष्य) "हृषीकेश" शब्द का अर्थ सर्व इन्द्रियों का प्रेरक है, अर्थात् सर्वेन्द्रियों के प्रेरक सर्वान्तर्यामी कूटस्थ चैतन्यरूपी श्रीभगवान् ही हृषीकेश शब्द से अभिहित होने योग्य हैं। इस श्लोक में श्रीभगवान् श्रीकृष्ण महाराज के लिये और कोई दूसरा नाम न लेकर "हृषीकेश" शब्द का प्रयोग करने से तात्पर्य्य यह है कि कूटस्थ चैतन्यरूपी श्रीभगवान् के इङ्गित से इन्द्रियों की कार्य में प्रवृत्ति होती है। जीव कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से ही कार्य करता है। जीव का सङ्कल्प कैसा भी हो परन्तु इन्द्रियों में कार्यसम्पादन की शक्ति न रहने से कार्य की सिद्धि नहीं होसक्ती है। श्रीभगवान् की सत्ता से ही अपञ्चीकृत सूक्ष्म पञ्चमहाभूतों के द्वारा ब्रह्माण्ड की सृष्टि तथा सर्व कार्य होते रहते हैं। पञ्च सूक्ष्मभूत के सत्त्वांश से पञ्चज्ञानेन्द्रिय और रजांश से पञ्चकर्म्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। श्रीभगवान् के आश्रय ही से स्वभाव से नियोजित पञ्चभूतों की स्वाभाविक क्रिया द्वारा धर्म्म का पालन होता है, अन्यथा जीव के मन द्वारा चालित होनेपर जो कार्य होता है सो अधर्म्मरूपी विरुद्ध कार्य होता है; सुतरां भगवत्परायण पञ्चपाण्डवों का परमात्मा के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध दिखाने के अर्थ ही "हृषीकेश" शब्द का प्रयोग कियागया है। श्रीअर्जुन के लिये "धनञ्जय" शब्द के प्रयोग का तात्पर्य्य यहहै कि जिन्हों ने सब दिशाओं को जीतकर परिपूर्ण धन अर्थात् ऐश्वर्यों का संग्रह किया है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस नाम से अर्जुन के महत्त्व और पाण्डवों में प्रधानत्व की सिद्धि करते हुए उनके आध्यात्मिक स्वरूप का भी सम्बन्ध दिखाया गया है। क्योंकि पञ्चतत्त्वों में से सृष्टि क्रिया के विचार से मध्यशक्ति होने के कारण अग्नितत्त्व का ही प्राधान्य है। जो पाचनशक्ति अधिक रखता है वही अधिक बलवान् होता है अतः वृकनामक अग्नि से असाधारण पाचनशक्तिविशिष्ट भीम स्वरूप और बल दोनों से ही असाधारण थे, यह "वृकोदर" शब्द से सूचित किया गया है; और भीमकर्म्मा अर्थात् अद्भुतकर्म्मारूपी विशेषणपद से वायुपुत्र भीम का महत्त्व और भी निश्चित कियागया है। कुन्ती देवी ने प्रबल तपस्या करने के अनन्तर युधिष्ठिर को धर्म्मराज की कृपा से प्रसव किया था, उसी तपशक्ति और क्षेत्र के माहात्म्य का कथन करके राजा युधिष्ठिर के असाधारण महत्त्व का वर्णन किया गया है। राजसूययज्ञ के अनुष्ठान द्वारा महत्त्वप्राप्ति तथा पाण्डवों में प्रधानत्व बोध कराने के लिये राजा शब्द का प्रयोग किया गया है। युद्ध में जयलाभ निश्चित होने के कारण जो अटल धैर्य को प्राप्त करता है वही युधिष्ठिर है। इस युधिष्ठिर शब्द द्वारा स्थूल अर्थ से राजा युधिष्ठिर का महत्त्व दिखाया गया है। स्वनाम प्रसिद्ध पाञ्चजन्य, देवदत्त, पौण्ड्र, अनन्तविजय, सुघोष और मणिपुष्पक इन छओं शङ्खों के नाम लेने से यह अभिप्राय था कि कुरुपक्ष में ऐसा एक भी प्रसिद्ध शङ्ख नहीं है जिसका कि नाम उल्लेख होसक्ता है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इससे कौरवों की न्यूनता सूचित कीगई है। काशिराज आदि के नाम लेनेसे यह अभिप्राय है कि, केवल श्रीकृष्ण महाराज और पञ्च पाण्डवों ने ही शङ्ख नहीं बजाये किन्तु काशिराजादि के तुल्य पाण्डवों की ओर के प्रबलप्रतापी और भी बहुत से वीरों ने महान् उत्साह के साथ अपने अपने शङ्खों को बजाया।

वेदोंके सब स्थल जिस प्रकार त्रिविध अर्थ से पूर्ण होते हैं उसी प्रकार उपनिषद्साररूपी श्रीगीताजी के सब श्लोकों का त्रिविध अर्थ है; परन्तु अधिकारविरोध से बुद्धिभेद होने के भय के कारण सब अर्थ सब समय कहने से लोकशिक्षा में हानि होसक्ती है। विशेषतः आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य से सर्वहितकर अर्थ ही सर्वदा प्रकाशित करने की रीति सदा से प्रचलित है। एक भाव से अतिरिक्त दूसरा भाव यदि कहीं प्रकाशित करने की विशेष आवश्यकता हो तो वहीं किया जासक्ता है। इन श्लोकों में केवल छः शङ्खों का पृथक् पृथक् नाम लियागया है अतः केवल छः शङ्खों के नाम लेने की विशेषता और विरुद्धपक्ष के शङ्खों के नाम लेने की अनावश्यकता इत्यादि कारण गभीर विज्ञानसे युक्त है। कूटस्थ चैतन्यरूपी श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी जीवत्रितापहारी भक्तमनोमन्दिरविहारी भक्तिरससिञ्चनकारी बांसुरी की ध्वनि एक ओर, और दूसरी ओर असुरत्रासकारी धर्म्मयुद्ध में जयप्रदानकारी देवमनोविनोदकारी पाञ्चजन्य शङ्खनाद का रहस्य केवल योगीगण

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ही साक्षात् रूप से सदा समझ सक्ते हैं । वाच्य वाचक रूप से नाद और मन्त्रों की महिमा और उनका स्वरूप संक्षेपरूप से वर्णन करने के अभिप्राय से स्मृतियों में कहा है । यथाः—

कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत्स्पन्देन सव्यापकं,
स्पन्दश्चाऽपि तथा जगत्सु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा ।
सृष्टिश्चाऽपि तथाऽऽदिमाकृतिविशेषत्वादभूत्स्पन्दिनी,
शब्दश्चोदभवत्तदा प्रणव इत्योङ्काररूपः शिवः ॥ १ ॥
साम्यस्थप्रकृतेर्यथैव विदितः शब्दो महानोमिति,
ब्रह्मादित्रितयात्मकस्य परमं रूपं शिवं ब्रह्मणः ।
वैषम्ये प्रकृतेस्तथैव बहुधा शब्दाः श्रुताः कालतः,
ते मन्त्राः समुपासनार्थमभवन् बीजानि नाम्ना तथा ॥ २ ॥

जहां कुछ कार्य है वहां कम्पन अवश्य होता है; और जहां कम्पन है वहां शब्द अवश्य होगा । इसी नियम से साम्यावस्था प्रकृति में सृष्टि की उत्पत्ति के समय जो प्रथम कम्पनहुआ उसी कम्पन का शब्द ओंकार है । साम्यावस्था प्रकृति के प्रथम कम्पन से जो शब्द हुआ वह ब्रह्मा विष्णु और शिवरूप देवत्रयात्मक सगुण ब्रह्म के परमपवित्र रूप का वाचक है। उसी तरह से वैषम्यावस्था प्रकृति के कम्पन से बहुत से शब्द उत्पन्न हुए वेही उपासना करने के अर्थ बीजमन्त्र हुए । इसका तात्पर्य्य यह है कि वैषम्यावस्था प्रकृति के ऊर्द्धगामी सब स्तरों से लेकर श्रीभगवान् से साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाली साम्यावस्था प्रकृति के निकटवर्ती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्तर पर्य्यन्त सब प्राकृतिक विभाग की कार्यकारी अवस्था के अलग अलग नाद हैं। उन्हीं नादसमूह को अन्तर्मुख योगिगण सुन सक्ते हैं, और वेही मन्त्ररूप होकर साधक को सिद्धि देनेवाले होते हैं। ऊर्द्ध्वगामी और अधोगामी कर्म प्रवाह से पुण्य और पाप का सम्बन्ध है। और वही रूपान्तर में निवृत्ति और प्रवृत्ति राज्य के अधिकारी देव और असुर से सम्बन्धयुक्त है। निम्नगामी कर्मरहस्य अर्थात् पापप्रवृत्ति की आसुरी शक्ति के विस्तारित वर्णन करने की अनावश्यकता होने के कारण, ऊर्द्ध्वगामी कर्मरहस्य अर्थात् अभ्युदय और निःश्रेयसप्रद दैवी सम्पत्ति के अधिकारसमूहके वर्णन करने सेही लोककल्याण होसक्ता है। इसी कारण दोनों पक्ष के प्रधान पुरुषों में से केवल दैवीपक्ष के छः व्यक्तियों के छः शङ्खों के नाम लियेगये हैं। प्रथम शङ्खध्वनि से साक्षात् परमात्मा कूटस्थ चैतन्य श्रीभगवान् का ही सम्बन्ध है, और अवशिष्ट पांच प्रकार की शङ्खध्वनि से पञ्चतत्त्वात्मक पञ्च अधिष्ठातृदेवों से सम्बन्ध है। इसी कारण समाधि भाषा से पूर्ण श्रीगीताजी में केवल छः शङ्खों के नाम और उनकी ध्वनियों का वर्णन कियागया है॥ १५,१६,१७,१८॥

स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्।
नभश्च पृथिवीञ्चैव तुमुलोऽभ्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

(अन्वयः) तुमुलः (अतिभैरवः) सः घोषः (पाञ्चजन्यादिशङ्खध्वनिः) एव नभः (आकाशं) च पृथिवीं च अभ्यनुनादयन्

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(प्रति ध्वनिभिरापूरयन्) धार्त्तराष्ट्राणां (धृतराष्ट्रतनयानां तत्पक्षीयानाञ्च) हृदयानि व्यदारयत् (विदीर्णानि कृतवान्) ॥ १६ ॥

(भाषानुवाद) उस महान् शब्दने आकाशमण्डल और पृथिवी को प्रतिध्वनि से परिपूर्ण और धृतराष्ट्र के पक्षवालों के हृदय को विदीर्ण किया ॥ १६ ॥

(भाषाभाष्य) जिस समय कौरवों ने अपने अपने शङ्खादि वाद्यों को बहुत उत्साह से बजाते हुए रणोद्यम को सूचित किया उस समय पाण्डवों के हृदय में किसी प्रकार का चाञ्चल्य उत्पन्न नहीं हुआ, बरन् पाण्डवों ने उत्साह के साथ उस युद्ध के आमन्त्रण को स्वीकार करते हुए अपने अपने शङ्खों को बजाया। पाण्डवों की ओर से इसप्रकार निर्भयतासूचक शङ्खवादन को सुनते ही कौरवों के चित्त में भय का उदय हुआ, इसलियेही सञ्जय ने कहा कि पाण्डवों की शङ्खध्वनि ने "धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्" कौरवों के हृदयों को विदीर्ण किया, अर्थात् उनमें हृदय—विदारकसा दुःखदायी भय उत्पन्न हुआ। सञ्जय के इसप्रकार के कथन से कौरवों के चित्तकी दुर्बलता और पाण्डवपक्ष की तेजस्विता का भाव सूचित होता है। कौरवगण अधर्म्माचरण के साथ और पाण्डवगण धर्म्मतः प्राप्य अधिकार की रक्षार्थ युद्ध करने के लिये आये हैं, इसीलिये ही धर्म्म के बल से पाण्डवों के हृदय में जो उत्साह साहस और निर्भीकता है सो धर्म्मविरोधी कौरवों में नहीं है। इसी कारण कौरवगण पाण्डवों की उत्साहजनक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्खध्वनि को सुनतेही त्रासित होगये। पाण्डवों की शङ्खध्वनि का विशेष महत्व सूचन करने के लिये सञ्जय ने उल्लेख किया कि " नभश्च पृथिवीञ्चैव .... अभ्युनुनादयन् " अर्थात् नभोमण्डल और पृथिवी को प्रतिध्वनि से परिपूर्ण किया ॥ १६ ॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्त्तराष्ट्रान् कपिध्वजः।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥ २० ॥

(अन्वयः) हे महीपते ! अथ (भीतिमत्युपस्थितेरनन्तरं) कपिध्वजः पाण्डवः (अर्जुनः) धार्त्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् (युद्धोद्योगेऽवस्थितान्) दृष्ट्वा शस्त्रसम्पाते (युद्धार्थं शस्त्रप्रक्षेपे) प्रवृत्ते (प्रयोगाऽभिमुखे सति) धनुः उद्यम्य तदा हृषीकेशं इदं (वक्ष्यमाणं) वाक्यं आह ॥ २० ॥

(भाषानुवाद) हे महीपते ! (धृतराष्ट्र) कपिध्वज अर्जुन कौरवों को युद्धार्थ अवस्थित देखकर उस युद्ध के प्रारम्भ समय में धनुको उठाकर श्रीकृष्ण महाराज से कहने लगे ॥ २० ॥

(भाषाभाष्य) पाण्डवों की निर्भयताका भाव अब इस श्लोक में अर्जुन के आचरण द्वारा सञ्जय दिखारहे हैं। पूर्व श्लोक में कौरवों के हृदय की दुर्बलता सूचित की गई है, उस दुर्बलता के कारण उनको चाहिये था कि युद्धभूमि को छोड़कर भाग जावें अथवा पाण्डवों से सन्धि करके उनका प्राप्य अधिकार उनको देवें परन्तु हठ-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारिता के साथ युद्धोद्यम को न छोड़ना ही ठानकर युद्ध-भूमि में वे प्रस्तुत रहे, इसी विशेष बात को "अथ" अर्थात् अनन्तर इस शब्द के द्वारा सूचित करते हुए उसके अनन्तर अर्जुन ने जो किया सो कहा गया है। जब कौरवों को उस प्रकार हठ करते हुए देखा तब निर्भीक पाण्डवों की ओर से पहिले ही अर्जुन धनु को उठाकर युद्ध के लिये प्रस्तुत हुए। उभयपक्ष के बीच में अर्जुन का इस प्रकार आचरण पाण्डवपक्ष की निर्भयता का परिचायक है। न्याय पक्षपाती होने के कारण निःशङ्कभाव से अर्जुन ने श्रीकृष्ण से जो कुछ कहा है सो आगे कहते हैं ॥ २० ॥

अर्जुन उवाच।

सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥
यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

(अन्वयः) अर्जुनः उवाच। हे अच्युत! (कृष्ण!) उभयोः सेनयोः मध्ये मे (मम) रथं स्थापय। (कथमर्जुनेन रथं स्थापय इत्युक्तमित्याशङ्क्याऽऽह) अहं एतान् योद्धुकामान् अवस्थितान् यावत् निरीक्षे (पश्यामि), (किञ्च) अस्मिन् रणसमुद्यमे (युद्धप्रारम्भे) कैः सह मया योद्धव्यम्। (यावदेतत् निश्चिनोमि, तावत् रथं स्थापय इत्यभिप्रायः)। (अपरञ्च) अत्र (कुरुक्षेत्रे) युद्धे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दुर्बुद्धेः धार्तराष्ट्रस्य प्रियचिकीर्षवः (प्रियं कर्तुमिच्छवः) ये एते (वीराः) समागताः, योत्स्यमानान् (संग्रामसमुत्सुकान् तान्) अहं अवेक्षे ॥ २१,२२,२३ ॥

(भाषानुवाद) हे अच्युत ! दोनों सेनाओं के बीच मेरे रथ को स्थापन करो, मैं युद्ध की इच्छा से अवस्थित इन लोगों को तबतक देखूं कि इस युद्ध में मुझको किन के साथ युद्ध करना है। दुर्बुद्धि दुर्योधन के हितेच्छु युद्ध करनेवाले ये योद्धा जो इस युद्ध में इकट्ठे हुए हैं उनको मैं देखूंगा ॥ २१,२२,२३ ॥

(भाषाभाष्य) अर्जुन ने श्रीकृष्ण से क्या कहा है सो इन श्लोकों में कहा गया है। अर्जुन के वाक्यों में से "सेनयोरुभयोर्मध्ये रथंस्थापय मे" अर्थात् "उभयसेनाओं के बीच मेरे रथ को स्थापन कीजिये" इन वाक्यों को सुनकर कोई प्रश्न कर सक्ता है कि, सर्वेश्वर भगवान् से अर्जुन का इस प्रकार आदेश करना क्या उचित है? इस की मीमांसा यह है कि, भगवान् भक्तवत्सल हैं इसी लिये भगवान् के पास से भक्त का कुछ भी अप्राप्य नहीं है। और यहां भक्त अर्जुन का जब भगवान् पर इतना अधिकार है कि उन पर आज्ञा भी करते हैं तो इसके द्वारा यह भाव सूचित हुआ कि ऐसे भक्तवत्सल भगवान् जिनके सहायक हैं ऐसे पाण्डवों का युद्ध में जयलाभ अवश्यम्भावी है, इस में कोई सन्देह नहीं है। अच्युत शब्द के द्वारा यह भाव सूचित होता है कि जिनकी च्युति देशतः कालतः अथवा

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वस्तुतः कदापि सम्भव नहीं है । युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के द्वारा उनकी च्युति कदापि नहीं होगी अतः ऐसे सारथी की सहायता से पाण्डवों को जयलाभ अवश्य होगा। अब देखना चाहिये कि उभय सेनाओं के बीच में रथ स्थापन करने का क्या प्रयोजन था, इसका समाधान "यावदेतान्निरीक्षेऽहं" इत्यादि वाक्यों से लेकर "प्रियचिकीर्षवः" तक के वाक्यों पर विचार करने से होजायगा। उन वाक्यों में "योद्धुकामानवस्थितान्" कहा है। "योद्धुकामान्" अर्थात् सन्धि आदि के अभिप्राय से नहीं, प्रत्युत युद्ध की इच्छा से। "अवस्थितान्" अर्थात् भय होने पर भी पलायनतत्पर नहीं प्रत्युत अवस्थित। इसी लिये ऐसे हठकारी "एतान्" अर्थात् कौरवों को और उनके पक्षवालों को देख लूँ, ऐसा कहाहै। अब यहां यह शङ्का हो सक्ती है कि अर्जुन स्वयं योद्धा हैं और युद्ध करने के लिये ही आये हैं तो फिर साधारण दर्शकों की भांति क्या देखना चाहते हैं? इसी लिये कहा है कि "कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे" अर्थात् इस रणोद्यम में किस के साथ मुझे युद्ध करना है। सजातीयों और बन्धुवर्गों के परस्पर में यह जो युद्ध का उद्योग हुआ है इस उद्योग में "मया कैः सह योद्धव्यम्" अर्थात् मुझे किसके साथ प्रतियोगितापूर्वक युद्ध करना है। अथवा "कैर्मया सह योद्धव्यम्" अर्थात् कौन मुझ से प्रतियोगिता के साथ युद्ध करेंगे, यह एक बहुतही कौतुकावह समस्या का विषय

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

है, इसी विषय के निश्चय के लिये दोनों सेनाओं के बीच में रथस्थापन करने का प्रयोजन है। कहां तो बान्धवों की परस्पर में सन्धि होनी चाहिये और कहां यहां उसके विपरीत युद्ध की इच्छा ! दुर्योधन की यह विपरीत बुद्धि विनाश की सूचना करती है, परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि भीष्म और द्रोण सदृश प्राज्ञ और प्रवीण पुरुषों ने भी दुर्योधन की कुलनाशक और प्राणनाशक इस दुर्बुद्धि को न हटाकर उसी युद्धाग्नि में निज जीवन की आहुति प्रदान करने के लिये वे भी युद्धक्षेत्र में उपस्थित हुए हैं इसी लिये ही ये सब आततायी अर्जुन के द्रष्टव्य हैं। भगवत्कृपाप्राप्त श्रीमान् अर्जुन अपनी धर्म्मबुद्धि के कारण यह अनुमान करते थे कि देवांश से उत्पन्न श्रीभीष्मदेव और आचार्य द्रोण आदि महत्पुरुषगण अवश्य ही अन्याय और अधर्म्म के पक्षपाती नहीं होंगे, इस कारण वे स्वयं देखना चाहते थे कि शत्रुओं के दल में वे हैं या नहीं ॥ २१,२२,२३ ॥

सञ्जय उवाच ।

एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ! ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषाञ्च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ ! पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

(अन्वयः) सञ्जयः उवाच । हे भारत ! (धृतराष्ट्र !) गुडाकेशेन

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अर्जुनेन) एवं (पूर्वोक्तप्रकारेण) उक्तः (कथितः सन्) हृषीकेशः उभयोः सेनयोः मध्ये भीष्मद्रोणप्रमुखतः (भीष्मद्रोण प्रभृतीनां) सर्वेषां महीक्षितां (राज्ञां) च (समीपे) रथोत्तमं स्थापयित्वा "हे पार्थ ! समवेतान् एतान् कुरून् पश्य" इति उवाच ॥ २४,२५ ॥

(भाषानुवाद) हे भारत ! गुड़ाकेश (अर्जुन) के इस प्रकार कहने पर (भगवान्) हृषीकेश ने दोनों सेनाओं के बीच में भीष्मद्रोणादि समस्त राजाओं के सामने उस सर्व श्रेष्ठ रथ को स्थापन करके कहा "हे पार्थ ! एकत्रितहुए इन कौरवों को देखो" ॥२४,२५ ॥

(भाषाभाष्य) पूर्वोक्त श्लोक में अर्जुन के कथनानन्तर भगवान् अहिंसारूप धर्म्म को ही आश्रय करके अर्जुन को युद्धरूप हिंसाकार्य से निवृत्त होने के लिये सम्भवतः परामर्श दे सक्ते हैं, धृतराष्ट्र के चित्त में यदि कदाचित् ऐसी आशा हो इसी लिये उसके होने की सम्भावना समझ कर उसके निवारणार्थ अर्जुन के निदेशानुसार श्रीकृष्ण महाराजने जो कार्य किया है धृतराष्ट्र के पास इस श्लोक से सञ्जय उसे कहरहे हैं। धृतराष्ट्र को "भारत" शब्द के द्वारा सम्बोधन करने का अभिप्राय यह था कि कौरव और पाण्डवों के आदि पुरुष धर्मात्मा महाराजा भरत थे। सुतरां एक ही वंश के सन्तानों के परस्पर में इस प्रकार विवाद होना उचित नहीं है। एकमात्र धृतराष्ट्र ही कौरव और पाण्डवों में प्रवीण तथा अभिभावक स्वरूप हैं, अतः उनको

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चाहिये था कि इस कुरुपाण्डवविवाद को मिटादे, इसी लक्ष्य से धृतराष्ट्र को सञ्जय ने "भारत" शब्द से सम्बोधन किया है। अर्जुन के लिये इस श्लोक में "गुडाकेश" शब्द का प्रयोग कियागया है। "गुडाकायाः निद्रायाः ईशः कर्त्ता" अर्थात् जिन्होंने निद्रा को अपने वश में कर लिया है वेही "गुडाकेश" अर्थात् जितनिद्र होने से सावधान हैं। इसीलिये यहां इस "गुडाकेश" शब्द के प्रयोगद्वारा यही सूचित होता है कि अर्जुन ने सावधानता के साथ विचारपूर्वक ही रथस्थापनरूप कार्य का आदेश किया था। सुतरां उसके निर्देशानुसार कार्य करने में श्रीभगवान् के चित्त में किसी प्रकार के क्रोध के उत्पन्न होने की अथवा अर्जुन को इस युद्धरूप हिंसाकार्य से प्रतिनिवृत्त होने का परामर्श देने की सम्भावना नहीं है। प्रत्युत भगवान् ने अर्जुन की इच्छानुसार ही दोनों सेनाओं के बीच में भीष्मद्रोणप्रमुख राजाओं के सन्मुख अर्जुनके रथ को लेजाकर स्थापन किया। कौरवों में भीष्म और द्रोण का सर्वापेक्षा प्राधान्यसूचन करने के लिये ही उनके नाम का उल्लेख पृथक् किया गया है; विशेषतः भीष्म और द्रोण के प्रमादजनित मोह को स्पष्टरूप से अर्जुन को सूचित कराने के अर्थ इन दोनों नामों का उल्लेख श्रीभगवान् ने किया है। "रथोत्तमं" अर्थात् सर्वश्रेष्ठ रथ, क्योंकि यह रथ अर्जुन को भगवान् अग्निदेव से मिला था, और इस के अतिरिक्त स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण महाराज सारथी के पद

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

को स्वीकार करते हुए इस रथ पर विराजमान हैं। श्री-भगवान् के लिये "हृषीकेश" अर्थात् सर्वजन के निगूढ़ अभिप्राय को जाननेवाले। इस शब्द का प्रयोग होना यही सूचित करता है कि अपने कुटुम्बी तथा बन्धुबान्धवों को रणभूमि में उपस्थित देखने से अर्जुन के चित्त पर शोक मोहादि का बड़ाभारी प्रभाव पड़ेगा इस बात को "हृषीकेश" अर्थात् अन्तर्यामी होने के कारण पहले से ही जानकर श्रीभगवान् "हे पार्थ! युद्धक्षेत्र में एकत्रित कौरवों को देख" इस वचन के द्वारा परवर्ती भावों को रोकने का यत्न कररहे हैं। इसमें "पार्थ" इस सम्बोधन के द्वारा इस भाव की सूचना करना नहीं समझना चाहिये कि "पृथा" अर्थात् स्वाभाविक शोक मोहग्रस्त स्त्री से उत्पन्न होने के हेतु अर्जुन के चित्त में भी स्त्रीस्वभाव के साथ क्षेत्रज सन्तति होने से विशेष सम्बन्ध होने के कारण शोक मोह का उदय शीघ्रही होजायगा। अथवा वीरपुरुष के लिये उसके पिता का पुत्र न कहकर माता का पुत्र कहना उसकी वीरता और क्षत्रियता में शोक मोहादि का कलङ्क आरोपण करनाही है। प्रत्युत "पार्थ" इस शब्द के द्वारा मेरे पिताकी भगिनी के पुत्र हो इसलिये तुम्हें शोक मोह में अभिभूत नहीं होना चाहिये इस भाव की सूचना कररहे हैं। पूर्णावतार श्रीकृष्णचन्द्र में शोक मोहादि का लेशमात्र भी नहीं है अतः अपना सम्बन्ध याद दिलाकर शोक मोह से अभिभूत न होने देने की चेष्टा करना श्रीभगवान् का

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युक्तियुक्तही है । "पश्य" शब्द के प्रयोग करने का यह अभिप्राय है कि मैं सारथी होकर सावधानता के साथ इस युद्ध में तुम्हारी रक्षा करूंगा इसलिये तुम निःशङ्क होकर विरुद्धपक्ष के योद्धाओं को देखो । इसी "पश्य" शब्द के भीतर "शोक मोहादि द्वारा अभिभूत मत होना" यह भाव भी निगूढ़रूप से निहित है ॥ २४,२५ ॥

तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितॄनथपितामहान् ।
आचार्य्यान्मातुलान्भ्रातॄन्पुत्रान्पौत्रान्सखींस्तथा ॥
श्वसुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ॥ २६ ॥

(अन्वयः) तत्र पार्थः उभयोः सेनयोः (मध्ये) अपि स्थितान् पितॄन् (पितृसदृशान्) अथ (तथा) पितामहान् आचार्य्यान् मातुलान् भ्रातॄन् पुत्रान् पौत्रान् तथा सखीन् श्वसुरान् सुहृदः च एव अपश्यत् ॥ २६ ॥

(भाषानुवाद) वहां अर्जुनने दोनों सेनाओं में ही पितृसदृश व्यक्ति, पितामह, आचार्य्य, मामा, भाई, पुत्र, पौत्र, मित्र, श्वसुर और सुहृदों को उपस्थित देखा ॥ २६ ॥

(भाषाभाष्य) तदनन्तर अर्जुन ने देखा कि दोनों पक्ष की सेनाओं में ही पूज्य अथवा स्नेहार्ह लोग उपस्थित हैं । जैसे कौरवों में भूरिश्रवादि पितृसदृश व्यक्ति, भीष्म सोमदत्तादि पितामहगण, शल्य शकुनि आदि मातुलगण, द्रोणकृपादि आचार्य्यगण, इत्यादि पूजनीय व्यक्ति हैं, एवं

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्मणादि पुत्रगण और उनके पुत्रगण अर्थात् पौत्रगण, अश्वत्थामाजयद्रथादि मित्रगण तथा कृतवर्मा भगदत्तादि सुहृद्गण विद्यमान हैं। सुहृद् शब्द के द्वारा मातामहादि और जितने आत्मीय तथा उपकारक व्यक्ति हैं उन सबों से भी तात्पर्य्य है। जैसे उक्त कौरवों से अर्जुन का सम्बन्ध है उसी तरह अपने पक्ष की सेना में भी भ्रातृपुत्रपौत्रादि सम्बन्धयुक्त अनेक योद्धा हैं अत एव "सेनयोरुभयोरपि" इन शब्दों का प्रयोग हुआ है ॥ २६ ॥

तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्बन्धूनवस्थितान् ।
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

(अन्वयः) सः कौन्तेयः (अर्जुनः) अवस्थितान् तान् सर्वान् बन्धून् समीक्ष्य परया कृपया आविष्टः विषीदन् (अनुतापं कुर्वन्) इदं अब्रवीत् ॥ २७ ॥

(भाषानुवाद) कुन्तिपुत्र अर्जुन ने उन समुपस्थित सब बान्धवों को देख परमकरुणाविष्ट होकर विषादयुक्तभाव से कहा ॥ २७ ॥

(भाषाभाष्य) मनुष्य भावों का दास है। भावशून्य होकर मनुष्यान्तःकरण एक क्षण भर के लिये भी स्थित नहीं रहसक्ता है, इसी कारण वैदिकदर्शनों का सिद्धान्त यह है कि एकही प्रकार का कार्य भिन्न भिन्न कर्त्ताओं के हृदय के भिन्न भिन्न भावों के अनुसार किया जाने से पाप अथवा पुण्यरूप में परिणत होकर दुःख और सुखरूप विभिन्न फलप्रदान किया करता है। उदाहरण स्थल पर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कहसक्ते हैं कि इन्द्रियतृप्ति की इच्छा से जो भोग किया जाता है सो सब बन्धन का हेतु होता है, परन्तु वही भोग यदि भगवद्भाव से युक्त होकर हो तो मुक्ति का कारण होगा; जैसे रसना की तृप्ति के लक्ष्य से जो भोजन किया जाय उससे बन्धन होगा, परन्तु वही भोज्यपदार्थ यदि इष्टदेव को अर्पित होकर प्रसादबुद्धि से ग्रहण किया जाय तो मुक्ति का कारण होगा । इसी सिद्धान्त के अनुसार शास्त्रों में एकही हिंसात्मक कार्य को कहीं धर्म्म और कहीं अधर्म्म कहा है । अतः शास्त्रविहित हिंसा कार्य्य में अधर्म्म बोध होना तात्त्विकज्ञान की प्रतिबन्धकरूप मोहयुक्त विपरीत बुद्धि का ही कार्य है । यहां समुपस्थित बान्धवों को देखकर उन लोगों में अपनी ममत्वबुद्धि होने के कारण प्रारम्भित युद्धरूप क्षात्रधर्म्म अर्थात् शास्त्रविहित स्वधर्म्म से निवृत्त करने के लिये जिस महान् अनर्थकारिणी प्रवृत्ति ने अर्जुन के विवेकज्ञान को समाच्छन्न किया है, उसके प्रभाव से अर्जुन की जो अवस्था प्रारम्भ हुई है उसको इस श्लोक के द्वारा प्रकट किया जारहा है ।

अर्जुन के लिये इस श्लोक में "कौन्तेयः" अर्थात् कुन्ती का पुत्र, इस शब्द का प्रयोग किया गया है उसका तात्पर्य्य यह है कि स्त्रियों का चित्त बहुतही कोमल होता है, इससे यदि कोई कार्य्य कठोर हो एवं वह चाहे जितना ही बड़ा कर्त्तव्य कर्म्म हो, परन्तु स्वाभाविक चित्तदौर्बल्य के कारण स्त्रियां प्रायः ऐसे कार्य्य को करने से पीछे हटती

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हैं अर्थात् अस्वीकार करती हैं। इसी तरह जिन पुरुषों के चित्त का स्वभाव स्त्रीस्वभावसदृश कोमल है या ममत्व-बुद्धि आदि किसी कारण से उनके चित्त में करुणरस का उदय होजाता है तो वे भी दृढ़चित्त से करने योग्य कामों से स्त्रियों की भाँति पीछे हटते हैं। अर्जुन के वीरपुरुष होने पर भी युद्धभूमि में अपने बान्धवों को उपस्थित देख कर उन लोगों में अपनी ममत्वबुद्धि होने के कारण उनके चित्त में करुणरस का उदय हुआ था इसी कारण उनको पिता का पुत्र न कहकर माता का पुत्र कहा है। "विषीद-न्निदमब्रवीत्" अर्थात् शोक करते हुए बोला, इसके द्वारा यह भाव सूचित होता है कि बोलते समय गद्गद कण्ठ हो-कर मानो अश्रुपात करते हुए कहा। "कृपयापरयाविष्टः" इस शब्द का कोई कोई "कृपया अपरया आविष्टः" अर्थात् दूसरी कृपा से आविष्ट हुआ, ऐसा भी पदच्छेद करते हैं। इस प्रकार के पदच्छेद से यह भाव सूचित होता है कि अपने पक्ष के लोगों पर अपनी ममत्वबुद्धि होने के कारण आत्मीयसम्बन्ध होने से उन पर कृपाभाव अर्जुन का प्रथम से ही था, परन्तु युद्धक्षेत्र में आकर विपक्षवालों को देखने से उनसे भी अपना ममत्वबुद्धिप्रयुक्त आत्मीय स-म्बन्ध होने के कारण उनके चित्त में "अपरा" अर्थात् दूसरी कृपा का भाव उदय हुआ था॥ २७॥

अर्जुन उवाच।

दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण! युयुत्सुं समुपस्थितम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सीदन्ति मम गात्राणि मुखञ्च परिशुष्यति ॥२८॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ।
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ॥२९॥

(अन्वयः) अर्जुनः उवाच । हे कृष्ण ! युयुत्सुं (योद्धुमिच्छन्तं) इमं समुपस्थितं स्वजनं दृष्ट्वा मम गात्राणि सीदन्ति (व्यथन्ते) मुखं च परिशुष्यति । (किञ्च) मे शरीरे वेपथुः (कम्पः) च रोमहर्षः (रोमाञ्चः) च जायते, हस्तात् गाण्डीवं (अर्जुनस्य स्वनामप्रसिद्धं धनुः) स्रंसते (भूमौ पतति) त्वक् च एव परिदह्यते (सन्तप्यते) ॥ २८, २९ ॥

(भाषानुवाद) अर्जुन ने कहा, हे कृष्ण ! युद्ध की इच्छासे समुपस्थित इन आत्मीयों को देखकर मेरे सब अङ्ग अवसन्न होरहे हैं, मुख सूखता है, शरीर में कम्पन और रोमाञ्च होरहा है, हाथ से गाण्डीव गिरा जारहा है और शरीर की त्वचा पर सन्ताप उत्पन्न हुआ है ॥ २८, २९ ॥

(भाषाभाष्य) अब श्रीभगवान् के प्रति अर्जुन ने जो कुछ कहा है सो प्रकट किया जारहा है । आत्मज्ञान का अभाव होने से मनुष्य के चित्त में देहात्मबुद्धि होजाती है इसी कारण अपने स्थूल देह से आत्मभाव होता है और अपने देह से सम्बन्धयुक्त होने से अथवा स्नेहादि होने से परदेह में भी वही भाव उत्पन्न होजाता है इसी को अभिनिवेश कहते हैं । यह अभिनिवेश उस विवेक ज्ञान का प्रतिबन्धक स्वरूप है कि जिस विवेकज्ञान के रहने से

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वधर्म्मपालनरूपी कर्त्तव्य की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति हुआ करती है। अर्जुन के चित्त में उसी प्रकार का अभिनिवेश हुआ, अतः क्षात्रोचित युद्धरूपी स्वधर्म्म का पालन करते समय उपस्थित वीर जो आत्मीय हैं उनके देहनाश की सम्भावना सोचकर अविवेकी की तरह गात्रदाहादि विकलतासूचक लक्षणों के द्वारा अपनी शोकार्त्त दशा को प्रकट कररहे हैं।

यह संसार द्वन्द्वमूलक है। प्राकृतिक तीनों गुणों में से परिणामगति के अनुसार दो गुणों की ही प्रधानता होती है; अर्थात् सृष्टि में या तो सात्त्विक परिणाम या तामसिक परिणाम हुआ करता है, रजोगुण केवल परिणामकारी है। सुतरां सात्त्विक परिणाम और तामसिक परिणाम के भेद से सृष्टि में दिवारात्रि, ज्ञान अज्ञान, चेतनता जड़ता, सुख दुःख आदि द्वन्द्व की स्थिति पाई जाती है। द्वन्द्व का सम्बन्ध सृष्टि के साथ इतना घनीभूत है कि सृष्टपदार्थ के सब भेदों में इसी प्रकार की द्विविध सृष्टि भी पाई जाती है। देव और असुर के अलौकिक भेद, मनुष्यों में दैवीसम्पत्ति और आसुरीसम्पत्ति, पशुओं में छाग और मेष, गाय और भैंस, घोड़ा और गधा आदि भेद इसी द्वन्द्व के परिचायक हैं। स्थूल जगत् में इन्हीं द्वन्द्वमूलक सृष्टि के भेदों को पहचानना सहल है, परन्तु सृष्टपदार्थ जितना सूक्ष्म अर्थात् अपने कारण की ओर जाता है उतनीही द्वन्द्वमूलक विषयों को ठीक ठीक पहचानने में उत्तरोत्तर

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कठिनता हुआ करती है। जरायुज योनि के जीवों में द्वन्द्व की भेदमूलक अवस्था को पहचानना जितना सहल है, अण्डजयोनियों में उसका पहचानना उससे कठिन है। अण्डजयोनियों से स्वेदजयोनियों में और स्वेदजयोनियों से उद्भिज्जयोनियों में इस भेद के पहचानने में क्रमशः कठिनता है। उद्भिज्ज में अन्नमय कोषरूपी एक ही कोष का विकास है परन्तु अन्यान्य योनियों में क्रमशः दो तीन और चार कोष का विकास होने के कारण उत्तरोत्तर कोष-विकासदशा में पहचानना क्रमशः सहल और निम्न निम्न कोष-अविकास दशा में पहचानना क्रमशः कठिन हुआ करता है। इसी प्रकार स्थूल विषय राज्य से भी सूक्ष्मवृत्ति राज्य में इस भेद का पहचानना और भी कठिन है और वृत्तिराज्य से भी भावराज्य में इस भेद का पहचानना सब से कठिन है। इसी कारण धर्म्माधर्म्मनिर्णय करने में कभी कभी ज्ञानीगण भी विमोहित हुआ करते हैं। वस्तुतः इसी द्वन्द्वविज्ञान के कारण ही काम और प्रेम, मोह और दया आदि तामसिक और सात्त्विक भेदमूलक वृत्तियां बाहर से स्वरूपतः एक ही ढंग की होने पर भी भीतर से इन में आकाश पाताल कासा भेद है। कामीपुरुष अपनी नायिका के साथ जो कामजनित चेष्टा करता है स्थूलदृष्टि से देखने पर यही प्रतीत होगा कि परम धार्म्मिकपुरुष अपनी सहधर्म्मिणी स्त्री के साथभी वैसीही चेष्टा करता है, परन्तु एकके अन्तःकरण में तमोगुणरूपी

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाप का अन्धकार और दूसरे के अन्तःकरण में सत्त्वगुण-रूपी पुण्य का प्रकाश होरहा है । उसीप्रकार मोहातुर आत्मीयजन अपने स्वजनों के दुःख को देखकर जिसप्रकार क्लेशप्रकाशक चेष्टा करेंगे, संसार भरके मनुष्यों को स्वकुटुम्ब माननेवाले जीवन्मुक्त महात्माभी उसी रीतिपर दुःखी जीवों के दुःख को देखकर करुणार्द्रहृदय हो दया प्रकाश करेंगे; बहिर्दृष्टि से मोहान्ध बद्ध जीवकी चेष्टा और मुक्तात्मा दयार्द्र महापुरुष की चेष्टा समान प्रतीत होनेपर भी उनके अन्तःकरण में रात्रि और दिन कासा भेद है। वस्तुतस्तु जिससमय मनुष्य किंकर्त्तव्य विमूढ़ होजाता है उससमय कौनसी मोहकी वृत्ति है और कौनसी दयाकी वृत्ति है इसके सिद्धान्त निश्चय करने में वह विचारवान् होनेपर भी विचलित होजाता है। इससमय अर्जुनकी वही दशा होजाने के कारण वे कर्त्तव्यकर्म्म में अकर्त्तव्य कर्म्म, मोह में दया, अहिंसा में हिंसा और धर्म्म में अधर्म्म देखने लगे थे। यही उनके क्षात्रधर्म्म और राजधर्म्म से विरुद्ध इस प्रकार के वचनों का गुप्त रहस्य है । वास्तव में इससमय अर्जुन मोहसे आतुर होगये थे और उनका शरीर और मन दोनोंही मोहसे आच्छन्न होगया था ॥ २८, २९ ॥

न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ।
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥ ३० ॥

(अन्वयः) हे केशव! अवस्थातुं न च शक्नोमि, मे मनः च

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भ्रमतीव, विपरीतानि निमित्तानि (वामनेत्रस्फुरणादीनि) च पश्यामि ॥ ३० ॥

(भाषानुवाद) हे केशव ! (हे कृष्ण !) मुझसे और स्थिर नहीं रहाजाता है, मेरा मन मानो भ्रमयुक्त होरहा है (घूम रहाहै) और वामनेत्रस्फुरणादि विपरीत शकुनसमूह देख रहा हूं ॥ ३० ॥

(भाषाभाष्य) बन्धुविनाश के भयसे अर्जुनके चित्त में विकार उत्पन्न हुआ है उसीके कारण शरीर में भी अवसाद आगया है, अतएव कहते हैं " न च शक्नोम्यवस्थातुं " अर्थात् मुझसे और स्थिर नहीं रहाजाता, तात्पर्य्य यह है कि शोकभार से शरीर क्रमशः विवश होताजाता है, इससे अर्जुन की मूर्च्छितदशा का पूर्वलक्षण सूचित कियागया है। चित्तमें भी विकलता आगई है अतः कहा है कि "भ्रमतीव च मे मनः" अर्थात् मेरा मन मानों घूमरहा है । तात्पर्य्य यह है कि मन अत्यन्त विकल है जिससे बुद्धि कुछ निश्चय नहीं करसक्ती कि क्या करना चाहिये ।

अचानक एक अनिष्ट की धारणा होजाने से मनकी ऐसी अवस्था होजाती है, और कुछ समय के पश्चात् मनुष्य कुछ विवेचना करने में समर्थ होता है। ऐसे अवसाद के परिणाम में मनुष्य अपने सत् और असद्भावों में से जो उससमय प्रबल होताहै उसको आश्रयकरके उसीके अनुकूल विचार करता हुआ उसीके अनुकूल युक्तियें ढूँढ़ने लगता है उस समय यदि असद्भावका आश्रय करे तो यही प्रमाद है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अर्जुनको बुद्धिविभ्रम होगया था अतः निज क्षत्रियधर्म्मानुकूल व्यापार में अधर्म्मबुद्धि करतेहुए और उसीके अनुकूल युक्तियें देना प्रारम्भ करतेहुए कहते हैं कि "निमित्तानि च विपरीतानि पश्यामि" अर्थात् भावी अशुभसूचक वामनेत्रस्फुरणादि अपशकुनसमूह देखरहा हूँ।

अर्जुन परम आस्तिक और धर्म्मात्मा हैं अतः तमःप्रधान बुद्धिकी अवस्था में भी अन्य युक्तियों को पीछे कहकर प्रथम अशकुनरूप दैवी युक्तिको कहरहे हैं। प्रकृतिराज्य में अचानक कोई कार्य नहीं होता, क्रमशः होता है; परन्तु अहङ्काराभिभूत मनुष्य उसको कार्य्यमें परिणत होनेके समय देखता है, प्रारम्भ में देख नहीं सक्ता, अतएव अचानक होना अनुभव करता है। प्रकृति माताके अधीन होकर चलनेवाले अर्थात् धर्म्मात्मा महापुरुषगण प्रकृति जिस कार्य्यको जिस समय प्रारम्भ करती है उसी समय देखलिया करते हैं। प्रकृति की उस कार्य्यारम्भ की प्रथम चेष्टा को प्रकृति का इङ्गित अथवा शकुन कहते हैं। कोई कोई महर्षि का मत है कि कार्य्यारम्भ की प्रथम चेष्टा से लगाकर कार्य सम्पूर्ण होने के पूर्व की चेष्टाओं तक सबही चेष्टाएँ शकुन मानी जाती हैं, अर्थात् कार्य प्रारम्भ से कार्य्य समाप्ति के पूर्व क्षण तक प्रकृति माता असंख्यबार उस कार्य के प्रारम्भ होजाने की सूचना इङ्गित द्वारा डंकेकी चोटसे (स्पष्टरीत्या) बराबर दिया करती है, अज्ञानान्ध मनुष्य चाहे उसको समझे या न समझे और समझकर भी उसका प्रतीकार करे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

या न करे। मनुष्येतर जीवों में अर्थात् प्रकृति राज्य (जड़ राज्य) के जीवों में प्रकृति का इङ्गित सर्वदाही स्फुरित होता है परन्तु मनुष्य में अहङ्कार के तारतम्यानुसार कम ज्यादा हुआ करता है। त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियों ने प्राकृतिक इङ्गित को जानकरके शकुनशास्त्र बनाया है, वह शास्त्र सत्य है, और इस समय अर्जुन को विरुद्ध शकुनों की प्रतीति होना भी सत्य है, क्योंकि इस समय अर्जुन की बुद्धि को विमोहित करनेवाली बहुतही अशुभ दशा का परिचायक वह अपशकुन था। अर्जुन ने वैसा न समझकर अपनी प्रमाद-युक्त बुद्धि के कारण उसको युद्ध के न करने का परिचायक समझ लिया था। वह अपशकुन अर्जुन को उसकी भावी बुद्धिनाश और धर्म्मत्याग करानेवाली पतितदशा को सूचित करता था, परन्तु अर्जुन में प्रमाद की वृद्धि होजाने से वे उसको अपने कर्त्तव्य कर्म्मरूपी युद्धकार्य्य में अशुभ की सूचना समझ रहे थे। जिस भाग्यवान् पर गुरुकी कृपा होती है और जो भक्त अपनी शुद्ध भक्ति के कारण भगव-त्सान्निध्य प्राप्त करता है उसको घोरतर प्रमाद की दशा में भी भगवत्सहायता मिलती है। अतः इस समय अर्जुन को श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र की सहायता मिली थी।

अवसाद के समय में तमोगुण होने पर भी दूसरेही क्षण में रजःप्रधान तमोगुण का आविर्भाव हुआ था। रजोगुण का धर्म्म है कि संदेहात्मक वृत्ति उत्पन्न करता है, अतः संदेह भाव को सूचित करने के उपक्रम में अपने तामसिक

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पक्ष को प्रतिपादन करने की धर्म्मभावमूलक दैवी युक्ति देते हुए भी प्रथम "केशव" इस सम्बोधनपद को कहकर फिर उस दैवी युक्ति को कहना, अर्जुन का श्रीभगवान् में पूज्यभाव सूचित करता है। इसी भाव का प्रारम्भ यहां से होकर यह भाव श्रद्धारूप में परिणत होता हुआ अर्जुन के मुख से "शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्" इस अन्तिम वाक्य को निकलवाने का कारण हुआ है। अर्जुन को श्रीभगवान् का कुछ स्वरूपज्ञान अवश्य था अतः "केशव" शब्द का प्रयोग करते हुए भगवान् से पूछा है, नहीं तो स्वयं सर्वगुणसम्पन्न थे अपना सन्देह श्रीभगवान् से क्यों पूछते और "केशव" शब्द का प्रयोगही क्यों करते। अस्तु "केशव" शब्द का भावार्थ यह है, "केशौ वात्यनुकम्पया गच्छतीति केशवः" अर्थात् क=ब्रह्मा (सृष्टिकर्त्ता) और ईश=रुद्र (संहर्त्ता) इन स्रष्टा और संहर्त्ताओं पर जिनकी कृपा बनी रहती है वे ही केशव हैं। श्रीसच्चिदानन्दमय श्रीभगवान् ने स्वयं क्लेशसम्पर्कविहीन होने से ही केशी आदि दुष्ट दैत्यों को संहार करते हुए भक्तों का पालन किया है, अतः अर्जुन अपने शोकभार को दूर करने के अभिप्राय से केशवशब्द द्वारा सम्बोधन करतेहुए श्रीभगवान् के शरणापन्न होते हैं, परन्तु रजःप्रधाना तामसिकी बुद्धि होने के कारण अपने अभिमत को प्रकाश करने से नहीं रुककर उसके समर्थन की युक्तियें आगे कहरहे हैं॥ ३०॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ।
न काङ्क्षे विजयं कृष्ण! न च राज्यं सुखानि च ॥३१॥

(अन्वयः) हे कृष्ण ! आहवे (रणे) स्वजनं हत्वा श्रेयः (मङ्गलं) च न अनुपश्यामि, विजयं न काङ्क्षे, राज्यं च सुखानि च न (काङ्क्षे) ॥ ३१ ॥

(भाषानुवाद) हे कृष्ण ! युद्ध में आत्मीयों को वध करके मैं कोई श्रेय (मङ्गल) नहीं देखता हूँ। मैं न विजय, न राज्य और न सुखको चाहता हूँ॥ ३१॥

(भाषाभाष्य) पूर्व श्लोक में विपरीत बुद्धि से उत्पन्न प्रमादजनित शोक का परिचय देकर उसका कुछ कारणाभास भी बतलाया । अब इस श्लोक के द्वारा उस कारणाभास से किस तरह की उल्टी प्रवृत्ति होरही है वह अर्जुन प्रकट कररहे हैं । दृष्ट और अदृष्ट अर्थात् ऐहिक और पारत्रिक भेद से श्रेय दो प्रकार का है । इन उभयविध फलों के लिये अर्जुन कहते हैं कि, मैं विचारपूर्वक देखता हूँ कि इस युद्ध में स्वजनों को वध करके मुझे कोई श्रेय नहीं मिलसक्ता है । युद्ध में यदि सब आत्मीयों को वध करके विजयी होजाऊँ तो किसके साथ राजभोग करूं ? इस लिये विजय से दृष्टरूप श्रेय नहीं मिलसक्ता है और न उससे अदृष्टरूप श्रेयही मिलसक्ता है क्योंकि शास्त्रों में अदृष्टरूप श्रेय प्राप्तहोने की निम्नलिखित विधि लिखी है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा :—

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्य्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राडयोगयुक्तश्च रणे चाऽभिमुखो हतः ॥

इस संसार में दो प्रकार के लोग सूर्य्यमण्डलभेदपूर्वक दिव्यलोक में गति प्राप्त करते हैं । प्रथम योगयुक्त (कर्म्मयोगी) परिव्राजक (संन्यासी) और द्वितीय जो सन्मुख संग्राम में प्राण त्याग करता है ।

उक्तरूप से दृष्टाऽदृष्ट श्रेय की सम्भावना न होने के कारण अर्जुन कहते हैं कि हे कृष्ण ! स्वजनों को वधकरके न तो मैं विजय चाहता हूँ और न राज्यही चाहताहूँ तथा न मुझको सुखही की चाहना है । इस प्रकार का इस इकतीसवें श्लोक का तात्पर्य है ॥ ३१ ॥

किन्नो राज्येन गोविन्द ! किं भोगैर्जीवितेन वा ।
येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ॥ ३२ ॥
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणाँस्त्यक्त्वा धनानि च ।
आचार्य्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ॥ ३३ ॥
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ।
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ! ॥ ३४ ॥
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ।
निहत्य धार्त्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ! ॥ ३५ ॥

(अन्वयः) हे गोविन्द ! येषां अर्थे नः (अस्माकं) राज्यं भोगाः सुखानि च काङ्क्षितं, ते एव इमे आचार्य्याः पितरः (पितृ-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सदृशाः) पुत्राः तथा च पितामहाः मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः तथा सम्बन्धिनः प्राणान् धनानि च त्यक्त्वा (त्यागं स्वीकृत्य) युद्धे अवस्थिताः (अतः) नः (अस्माकं) राज्येन किं, भोगैः जीवितेन वा किं (फलमिति शेषः) । हे मधुसूदन ! घ्नतः (अस्मान्मारयतः) अपि एतान् त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः अपि हन्तुं न इच्छामि, महीकृते (पृथिवीनिमित्तं) किं नु ? हे जनार्दन ! धार्त्तराष्ट्रान् निहत्य नः (अस्माकं) का प्रीतिः स्यात् ? ॥ ३२, ३३, ३४, ३५ ॥

(भाषानुवाद) हे गोविन्द ! जिन लोगों के लिये हम राज्य भोग एवं सुख चाहते हैं वेही ये आचार्य्य, पिता (पिता के समान), पुत्र, तथा पितामह; मातुल (मामा), श्वशुर, पौत्र, श्यालक (साले) और सम्बन्धिगण प्राण एवं धनका भी त्याग स्वीकारकरके इस युद्ध में उपस्थित हुए हैं अतः हमें (ऐसी दशा में) राज्य, भोग और जीवन से क्या (प्रयोजन है) ? हे मधुसूदन ! (यद्यपि) हमको वे मारें तोभी उनको इस पृथिवी के लिये क्या, त्रैलोक्य के राज्य के वास्ते भी मैं नहीं मारना चाहता हूँ । हे जनार्दन ! धार्त्तराष्ट्रों को (दुर्योधनादिकों को) विनाश करके हम लोगोंको क्या सन्तोष होगा, अर्थात् कुछभी सन्तोष नहीं होगा ॥ ३२, ३३, ३४, ३५ ॥

(भाषाभाष्य) पूर्व श्लोक में अर्जुन ने युद्ध करनेके विषय में श्रेयःप्राप्ति की असम्भावनामूलक अनपेक्षभाव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सूचित किया और इन श्लोकों से उसी अनपेक्षभाव को दृढ़ता के साथ प्रतिपादन कररहे हैं । श्रीभगवान् को "गोविन्द" पदके द्वारा सम्बोधन करने का तात्पर्य्य यह है कि गो=इन्द्रिय, विन्दति=पालन वा अधिष्ठान करते हैं, उन को गोविन्द कहते हैं, अतः इन्द्रियों के पालक वा अधिष्ठाता होने से आप सर्वान्तर्य्यामी हैं सो राज्यादि में मेरी आसक्ति नहीं है यह आपने जानाही होगा। इसप्रकार "गोविन्द" शब्द के द्वारा इङ्गित से अपने अनपेक्षभाव को सूचित कर उसी भावको पुनः स्पष्टरूप से प्रतिपादन करनेके अर्थही "येषामर्थे" अर्थात् जिनलोगों के लिये इत्यादि वाक्यों का प्रयोग किया गया है। राज्यादि अकेले के भोग की सामग्री नहीं है, जिन लोगों के लिये वह अपेक्षित हैं वेही लोग सर्वस्व त्यागकरके युद्ध के लिये आये हैं अतः इस युद्ध में न तो स्वार्थ है और न स्वात्मीयार्थ कीही सिद्धि है। किन किन लोगों से स्वात्मीयार्थ का सम्बन्ध है सो आचार्य्यादि नामों के उल्लेखद्वारा स्पष्ट करदिया है।

यदि अर्जुन से कहाजाय कि तुम तो कृपा से अभिभूत होकर इन लोगों का वध नहीं करना चाहते हो; परन्तु येही लोग राज्य के लोभ से तुमको विनाश करेंगे, अतः इन लोगोंका वध करके तुम राज्य का भोग करो । इस लिये अर्जुन कहते हैं कि "घ्नतोऽपि एतान् महीकृते किं त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोःअपि न हन्तुं इच्छामि, धार्त्तराष्ट्रान्निहत्य का प्रीतिः स्यात्" अर्थात् मैं इन लोगों के द्वारा माराजाऊँ

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सो अच्छा, परन्तु सामान्य पृथिवी की तो बातही क्या है यदि इन्हीं लोगों का विनाश करने से त्रिलोकी का राज्य भी मिलसक्ता हो तथापि मैं इन लोगों को मारना नहीं चाहताहूँ। दुर्योधनादि धार्त्तराष्ट्रगण मेरे बान्धवहैं। बान्धवों के वध से हमलोगों को कोई सन्तोष नहीं होगा क्योंकि बान्धवों के वध करने से पाप लगेगा।

"मधुसूदन" और "जनार्दन" शब्दोंसे श्रीभगवान् को सम्बोधन करने का तात्पर्य्य यह है कि आप "मधुसूदन" अर्थात् मधुनामक दैत्य को मारनेवाले और "जनार्दन" अर्थात् प्रलय करनेवाले हैं, अतः दुष्टदैत्यदलन करने पर और प्रलय में समस्त जीवों का विनाश करने पर भी आप को दोष स्पर्श नहीं करता है, इसी तरह दुष्टता के लिये इन लोगों का विनाशही यदि विहित हो तो आपही यथा-समय इनका विनाश करेंगे, ऐसा करने से कोई पाप का भागी नहीं होगा।

स्मरण रहे, यह जो पाप की सम्भावना की कल्पना है सो अर्जुन के बुद्धिविभ्रमरूप कारण सेही है। अधिकार और अधिकारी दोनों को देखकरही धर्म्म का निर्णय हुआ करता है। अर्जुन को धर्म्मज्ञान तो है, परन्तु अपने अधि-कारकी ओर न देखकर (अर्थात् अधिकारी का निर्णय न करके) अन्य अधिकारियों के अधिकारों को (अर्थात् धर्म्मों को) लेकर अपने में घटातेहुए यह सब प्रलाप कररहे हैं॥ ३१, ३३, ३४, ३५॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ।
तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान् ॥
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव!॥३६॥

(अन्वयः) आततायिनः एतान् हत्वा (तिष्ठतः) अस्मान् पापं एव आश्रयेत् तस्मात् स्वबान्धवान् धार्त्तराष्ट्रान् वयं हन्तुं न अर्हाः (समर्थाः), हे माधव ! हि (यस्मात्) स्वजनं हत्वा कथं सुखिनः स्यामः (भवामः) ॥ ३६ ॥

(भाषानुवाद) इन आततायियों को वध करने से हमलोगों को पापही लगेगा । इसलिये स्वबान्धव धार्त्तराष्ट्रों को हमलोग वध नहीं करसक्ते हैं। हे माधव! आत्मीयों का नाश करके हम कैसे सुखी होसक्ते हैं॥३६॥

(भाषाभाष्य) शास्त्रों में आततायी का लक्षण निम्न लिखित प्रकार से किया है ।

यथा :–

अग्निदो गरदश्चैव शस्त्रपाणिर्धनापहः ।
क्षेत्रदारहरश्चैव षडेते ह्याततायिनः ॥

अग्निद अर्थात् अग्नि लगानेवाला, गरद अर्थात् विष देनेवाला, शस्त्रपाणि अर्थात् शस्त्र हाथ में लेकर मारने को आनेवाला, धनापह अर्थात् धनहरण करनेवाला, क्षेत्रहर अर्थात् जमीन हरनेवाला और दारहर अर्थात् स्त्रीहरण करनेवाला; ये छः प्रकार के आततायी होते हैं ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कौरवों में ये छःहों लक्षण आततायी के मिलते हैं। जतुग्रहदाह से अग्निद, भीमसेन को विष देनेसे गरद, युद्धार्थ शस्त्र धारण करके उपस्थित हैं अतः शस्त्रपाणि, द्यूतक्रीड़ा में कपट से धन और भूमि हरण करने के कारण धनापह और क्षेत्रहर एवं द्रौपदी के चीरहरण और केशाकर्षणादि से दारहर हैं।

उक्त छःहोंप्रकार की तो बातही क्या है, एक प्रकार के आततायी को भी वध करनेकी शास्त्र की आज्ञा है।

यथाः—

आततायिनमायान्तं हन्यादेवाऽविचारयन् ।
नाऽऽततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन ॥ *

आततायी को आताहुआ (देखकर) विना विचारे मार ही डाले (क्योंकि) आततायी के मारडालने से मारनेवाले को कोई भी पाप नहीं होता है।

इन वचनों के द्वारा युद्ध में कौरवों का वध अर्थशास्त्रानुसार क्षात्रधर्म्मानुमोदित होनेपर भी धर्म्मशास्त्र के निम्नलिखित वचनों के अनुसार और अर्थ शास्त्रापेक्षया धर्म्मशास्त्र को बलवान् प्रतिपादन करनेवाले निम्नलिखित

* पाठान्तरम् ।

आततायिनमायान्तमपि वेदान्तपारगम् । जिघांसन्तं जिघांसीयान्न तेन ब्रह्महा भवेत् ॥

यदि आताहुआ आततायी वेदान्त पारगामी (वेदान्तपारगमनेच्छु) भी हो तौ भी मारने की इच्छा करके आरहा है अतः उसको मारने की इच्छा करे (मारे) ऐसा करने से ब्रह्महत्याकारी नहीं होगा ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विरोधपरिहारक वचन के अनुसार अर्जुन ने युद्ध करना अनुचित समझा होगा ऐसा अनुमान होता है ।

यथा:—

"स एव पापिष्ठतमो यः कुर्य्यात्कुलनाशनम् ।"

"मा हिंस्यात्सर्व्वाभूतानि ।" इत्यादि ।

वही परम अधार्मिक है जो अपने कुल का नाश करता है । सकल प्राणिमात्र की हिंसा न करे । इत्यादि ।

शास्त्रों में विरोध परिहार के प्रकरण में निम्नलिखित प्रकार से लिखा है ।

यथा:—

स्मृत्योर्विरोधे न्यायस्तु बलवान्व्यवहारतः ।
अर्थशास्त्रात्तु बलवद्धर्म्मशास्त्रमिति स्थितिः ॥

दो स्मृतियों का विरोध हो तो व्यवहार से देखनेपर न्यायही बलवान् होगा और अर्थशास्त्र से धर्म्मशास्त्र बलवान् होगा, ऐसी व्यवस्था कीगई है ।

उपर्युक्त धर्म्मशास्त्र के बलवान् वचनों के अनुसार कुलनाश का पाप और जीवहिंसा का पाप, उभय पाप एकसाथ होने के भयसे ही अर्जुन उक्त श्लोक कहते हैं अर्थात् आततायियों को मारने से भी पापही होगा, इस वास्ते अपने बन्धु कौरवों को हम नहीं मारसक्के, अपने बान्धवों को मारकर हम कैसे सुखी होसक्के हैं । परन्तु अर्थशास्त्र और धर्म्मशास्त्र दोनोंही शास्त्रानुशासन के अन्तर्गत हैं । अतः

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रानुशासन के वचनों के प्रयोग करने की मीमांसा इसी श्लोकके भाष्यमें आगे शङ्का उत्थापन करके की है।

श्रीभगवान् को "माधव" शब्द के द्वारा सम्बोधन करने का तात्पर्य्य भी विचित्र है। मा = लक्ष्मी (श्री) और धव = पति, अर्थात् श्रीपति (लक्ष्मीपति)। इस पद के द्वारा श्रीभगवान् से इङ्गित द्वारा प्रार्थना कीगई है कि हे भगवन् ! आप श्रीपति (माधव) होकर मुझे बन्धुबान्धव-विहीन और श्रीहीन होने के लिये उपदेश क्यों करते हैं स्वजनों को वध करके मैं श्रीहीन होजाऊँगा अतः फिर मैं कैसे सुखी होसक्ता हूँ।

अब यह प्रश्न होसक्ता है कि उपर्युक्त शास्त्रवचनानुसार आततायी स्वजनों की हिंसा करने में पाप होता है ऐसा कहकर अर्जुन ने युद्ध से उपेक्षा प्रकट की, परन्तु श्रीभगवान् ने आगे " प्रकृतिस्त्वां नियोक्ष्यति " अर्थात् प्रकृति तुझसे जबर्दस्ती करावेगी, यह कहकर युद्ध कराया तो उपर्युक्त सब वचनों का मर्म क्या है ?

जिस प्रकार प्रकृति के त्रिगुणात्मिका होने से सात्त्विक राजसिक और तामासिक रूप से तीन प्रकार के अधिकारी हुआ करते हैं, उसी प्रकार उनको शासन करने के वास्ते अधिकार भी गुणत्रय भेद से तीन हुआ करते हैं। सात्त्विक अधिकारी के वास्ते योगानुशासन, राजसिक अधिकारी के वास्ते शब्दानुशासन और तामसिक अधिकारी के वास्ते राजानुशासन है। शब्दानुशासन के दो भेद हैं, आचार्य्या-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नुशासन और शास्त्रानुशासन। प्रकृत विषय शास्त्रानुशासन से सम्बन्ध रखता है और वर्णाश्रमधर्म्म का तो मुख्य सम्बन्ध शास्त्रानुशासन से है ही। जिस प्रकार गुण विभाग से चातुर्वर्ण्य की सृष्टि हुई है उसी प्रकार आश्रम-चतुष्टय से भी गुणों का सम्बन्ध है। भेद इतनाही है वर्णों का गुण अपरिवर्त्तनीय होने के कारण आश्रमों के गुण उसको अनुल्लङ्घन करतेहुए उसीका क्रमविकाश सम्पादन किया करते हैं। जैसे ब्राह्मण में सत्त्वगुण बीजरूपेण होने पर भी चारों आश्रमों के गुण उसका क्रमशः विकाश करते हुए अन्तिम अवस्था में उसकी पूर्णता को सम्पन्न किया करते हैं। वर्णधर्म्म प्रवृत्तिरोधक और आश्रमधर्म्म निवृत्ति-पोषक होतेहुए सामञ्जस्य प्रतिपादन करके मनुष्य को मुक्ति-भूमि की ओर अग्रसर किया करते हैं। जिस प्रकार शूद्र तमोगुणप्रधान, वैश्य रजस्तमःप्रधान, क्षत्रिय रजःसत्त्वप्र-धान और ब्राह्मण सत्त्वगुणप्रधान स्वभावतःही हुआ करते हैं उसी प्रकार इन वर्णों के ब्रह्मचर्य्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये आश्रमचतुष्टय भी तत्तद्गुण विशिष्ट हैं ऐसा जानना चाहिये। क्षत्रिय रजःसत्त्वप्रधान है अतः उस के लिये केवल सत्त्वगुणप्रधान संन्यासाश्रम धारण शास्त्रों में विहित नहीं है क्योंकि उसके वर्ण का गुण अपरिवर्त्तन-शील है, उसमें वर्णगुणां को विकाश करदेनाही आश्रमगुण का कर्त्तव्य है सो वानप्रस्थाश्रम तक के आश्रमों के पालन से होही जायगा। वैश्य के लिये वानप्रस्थ और संन्यास

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दोनों आश्रम विहित नहीं हैं इसको भी उपर्युक्त रीतिसेही समझ लेना चाहिये। केवल शूद्र के विषय में कुछ सन्देह रहता है, सो शूद्रों का गृहस्थाश्रम अन्यवर्णों के गृहस्थाश्रम से नहीं मिलता, वह तमप्रधानवर्ण है अतः उसका गृहस्थाश्रम सर्वाङ्गसुन्दर नहीं होगा क्योंकि उसके वास्ते ब्रह्मचर्य्याश्रम विहित नहीं है। ब्रह्मचर्य्याश्रम ज्ञानशिक्षा प्रधान होने से अज्ञानरूप तमोगुणप्रधान शूद्र के वास्ते विहित नहीं है और विना प्रवृत्तिज्ञान प्राप्त किये गृहस्थाश्रम की पूर्णता नहीं होसक्ती। अस्तु इसी कारण से शूद्र के वास्ते उक्तप्रकारके गृहस्थाश्रममात्र की विधि शास्त्रों में है।

सारांश यह है कि शास्त्रानुशासन शब्दानुशासन का भेद होने के कारण प्रथम तो राजसिक अधिकारियों के वास्तेही वह कहा गया है और द्वितीयतः उसमें चारों वर्ण और चारों आश्रमों में से प्रत्येक को लक्ष्य करके अलग अलग वचन कहेगये हैं। अर्जुन ने उस समय प्रमाद के कारण शास्त्रके वचनों को अधिकार और अधिकारिभेद को न समझकर लगाने की भूल की है। शास्त्रानुशासन के वचनों से प्रकृत विषय को निर्णय करने की चेष्टा यद्यपि उन्होंने की है, तथापि स्वयं क्षत्रियवर्ण और गृहस्थाश्रमी हैं अतः उनको अपने वर्ण और अपने आश्रमके धर्म्मों को प्रतिपादन करनेवाले वचनों से प्रकृत विषय निर्णय करना चाहिये था, सो न करके क्षात्रधर्म्म और गृहस्थाश्रम के धर्म्म के विरुद्ध कार्य करने का मत स्थिर किया है। आ-

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ततायिवध ही उनकी प्रकृति के अनुकूल और उनका धर्म्म था उसको उन्नत प्रकृतिविशिष्ट पुरुषों के धर्म्म को प्रतिपादन करनेवाले वचनों से खण्डन करके वे अनधिकार चर्चा के दोष के भागी हुए हैं। इसीसे श्रीभगवान् ने आगे उपदेश द्वारा उनको प्रकृतिस्थ किया है ॥ ३६ ॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३७ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ! ॥ ३८ ॥

(अन्वयः) यद्यपि लोभोपहतचेतसः एते कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे (मित्रजिघांसायां) च पातकं न पश्यन्ति, (तथापि) हे जनार्दन ! कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिः अस्माभिः अस्मात् पापात् निवर्त्तितुं कथं न ज्ञेयं (निवृत्तावेव बुद्धिः कर्त्तव्येत्यर्थः) ॥ ३७, ३८ ॥

(भाषानुवाद) यद्यपि लोभाभिभूतचित्त होकर ये लोग कुलक्षय और मित्रद्रोह का पाप नहीं देख (समझ) सक्ते हैं; परन्तु हे जनार्दन ! कुलक्षय का दोष समझनेवाले हम लोग क्यों न इस पाप से निवृत्त होने की बुद्धि को स्वीकार करें ॥ ३७,३८ ॥

(भाषाभाष्य) अर्जुन से यदि कहाजाय कि बन्धुवंध से पाप लगनें का भय तुमको इतना क्यों है ? जिन महापुरुषों के आचरणों को देखकर अन्य व्यक्ति सदाचार

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की शिक्षा ग्रहण करते हैं ऐसे परम शिष्ट भीष्मादि महोदय-गण भी तो बान्धवों के हनन करने में प्रवृत्त हुए हैं अतः शिष्टाचारानुमोदित बन्धुवध करने में पाप का भय क्यों होता है ? इसीके उत्तर में ही अर्जुन इस श्लोक में "लोभोपहतचेतसः" इस शब्द का प्रयोग कर रहे हैं अर्थात् भीष्मादि इस युद्ध में लोभाभिभूत हुए हैं इसीलिये यहां शिष्टाचरण की कल्पना निरर्थक है क्योंकि महात्माओं का निःस्वार्थ भाव अथवा धर्म्मभाव से आचरित कार्य्य कलापही शिष्टाचार में परिगणित होसक्ता है और वही अनुकरणीय होता है एवं उसीके आचरण से आचरयिता तथा अन्य लोगों का भी उपकार होसक्ता है।

शास्त्रों में क्षत्रियधर्म्म को निम्न लिखित प्रकारसे प्रतिपादन किया है।

यथाः—

"आहूतो न निवर्त्तेत द्यूतादपि रणादपि।"

"विजितं क्षत्रियस्य।" इत्यादि।

द्यूत (जूआ) के वास्ते और रण (संग्राम) के वास्ते दूसरे व्यक्ति के आह्वान करने पर (बुलाने पर) लौटकर न आवे अर्थात् अवश्य जावे एवं द्यूतक्रीड़ा और संग्राम करे। जयही क्षत्रिय का (भूषण) है। इत्यादि।

इन उक्त क्षत्रियधर्म्म के वचनों के अनुसार युद्धही क्षत्रियों का धर्म्म है इसलिये अर्जुन को युद्ध करना चाहिये, परन्तु शास्त्रों में लिखा है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ॐ तत्सत्

मन्त्रयोग-संहिता ।

भूमिका ।

चित्तवृत्ति का निरोध करके श्रीभगवान् का सान्निध्य लाभ करने के लिये जितनी साधन प्रणालियाँ होसक्ती हैं उन सबों को पूज्यपाद महर्षियों ने चार भागों में विभक्त किया है। यथाः—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, और राज-योग। इन चार प्रकार के साधनों में से मन्त्रयोग प्रथम और सर्वलोकहितकर है।

यह संसार नामरूपात्मक है। सृष्टि का कोई भी पदार्थ नामरूप से अतीत नहीं होसक्ता है। सूक्ष्म जगत् और स्थूल जगत् इन दोनों के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग का नाम और रूप है यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है। सुतरां इन नाम रूपों के अवलम्बन से जो साधन किये जायँ वे सब मन्त्र-योग के अन्तर्गत हैं।

इस साधनप्रणाली का मूल सिद्धान्त यह है कि जिस प्रकार कोई मनुष्य जब कभी किसी भूमिपर गिर जाता है तब वह वहांसे उठते समय उसी भूमिको अवलम्बन करके उठता है उसी प्रकार मनुष्यों का अन्तःकरण भी जब नाम रूपों के अवलम्बन से वृत्तियों के द्वारा चाञ्चल्य और विषय संयोग के द्वारा बन्धन दशा को प्राप्त हुआ है तब केवल

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसी नामरूप के अवलम्बन से ही सुकौशल पूर्ण क्रियाओं के द्वारा साधक चित्तवृत्तियों का निरोध करके बन्धन से मुक्त हो सक्ता है । ❀ ।

जहां कोई कार्य्य होगा वहां कम्पन अवश्य होगा । और जहां कम्पन होगा वहां शब्दका भी होना स्थिर निश्चय है, यह बात स्वतःसिद्ध और विज्ञानानुमोदित है । सृष्टि के प्रारम्भमें जब साम्यावस्था की प्रकृति से प्रथम सृष्टिकार्य्य आरम्भ हुआ तब उसी साम्यावस्था से जो प्रथम हिल्लोल की ध्वनि हुई वही प्रणव है । † । यह केवल विज्ञानवेत्ताओं का अनुमान सिद्ध विषय नहीं है, प्रत्युत योगीलोग इसको प्रत्यक्ष करते हैं । योग साधन के द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध करके साधक जब साम्यावस्था प्रकृति के निकटस्थ हो जाता है, तब उस साधक को सदा सर्वदा वह प्रणव ध्वनि सुनाई देती है ।

साम्यावस्था की प्रकृति के साथ जैसा प्रणव का सम्बन्ध है वैषम्यावस्था की प्रकृति के साथ ऐसा ही बहुत से बीज मन्त्रों का सम्बन्ध है । साम्यावस्था की प्रकृति में सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों की समता रहती है । जैसे किसी थाली में जल रखकर उस थाली को हिलाया जाय तो सब से प्रथम उस थाली का सब जल एकबार एकदम हिल जायगा और पीछे उसीसे नाना तरङ्ग उत्पन्न होकर

❀ इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोग-लक्षण" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है ।
† इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोग-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परस्पर के घात प्रतिघात से बहुतसी तरंगमाला उत्थित हो जल को आलोड़ित करेंगी; तैसेही साम्यावस्था की प्रकृति से प्रथम कार्य्य आरम्भ होने पर तीनों गुणों का जो समान हिल्लोल हुआ उसी हिल्लोल से ॐकार का सम्बन्ध रहता है और नाना तरङ्गोंसे आलोड़ित जलकी जो अवस्था होती है उसी अवस्था की न्याईं वैषम्यावस्था की प्रकृतिकी विशेष विशेष अवस्थाओं के शब्दोंसे नाना बीजमन्त्रों का सम्बन्ध है। *। ॐकार या बीजमन्त्र जिनका कि मुखसे उच्चारण किया जाता है वे सब उन ध्वन्यात्मक प्रथम शब्दों के वर्णात्मक प्रतिशब्दमात्र हैं। इन प्रथम शब्दों का श्रुतिज्ञान समाधि के द्वारा होता है यह योगियों का सिद्धान्त है। प्रणवमन्त्र ब्रह्म का वाचक है। और बीजमन्त्र-समूह भिन्न भिन्न सगुणरूप तथा देव देवियों के वाचक हैं।

मन्त्र शाखापल्लवयुक्त व केवल शाखापल्लवमय भी होता है। मन्त्र के शाखा पल्लव समूह भावात्मक हैं इसीसे मन्त्र (१) केवल ॐकारस्वरूप, (२) केवल बीजस्वरूप, (३) ॐकार, बीज और शाखापल्लवयुक्त, (४) केवल बीज और शाखापल्लवयुक्त और (५) केवल शाखापल्लवमय इन रीतियों से अनेक प्रकार के होते हैं। ‡। जिस साधक की जैसी प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता होती है परीक्षापूर्वक उसको वैसेही मन्त्रका उपदेश यदि यथावत् किया जाय तो उसी मन्त्र के जप से साधक का अवश्यमेव कल्याण होगा।

* इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोग-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

‡ इस ग्रन्थ के "मन्त्र-भेदवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र का जप करने के लिये तीन प्रकार की विधि है, यथाः—वाचनिक जप, उपांशु जप, और मानस जप। मन्त्र का जप करते समय यदि दूसरे को सुनाई दे तो उस जप को वाचनिक जप कहा जाता है। यदि जप करते समय और किसी को सुनाई नहीं दे, परन्तु अपने को अनुभव होता रहे तो उसे उपांशु जप कहा जाता है, और जप करते समय यदि जिह्वा नहीं हिलती रहे एवं मनके द्वारा ही जप किया जाय तो उसे मानस जप कहते हैं। वाचनिक जप से उपांशु जप श्रेष्ठ और उपांशु जपसे मानस जप श्रेष्ठ है।*।

मन्त्रयोग में स्थूलध्यान की विधि है। ध्यानप्रणाली चार भाग में विभक्त है। यथाः—स्थूलध्यान, ज्योतिर्ध्यान, बिन्दुध्यान, और ब्रह्मध्यान। राजयोग में ब्रह्मध्यान की विधि, लययोग में बिन्दुध्यान की विधि, हठयोग में ज्योतिर्ध्यान की विधि, और मन्त्रयोग में स्थूलध्यान की विधि योगशास्त्रों में वर्णित है।

श्रीभगवान् के नित्य, सत्य, अनन्त भावों में से कई एक भावों के आश्रय से जो मूर्त्ति कल्पना की जाती है उसीको स्थूलध्यान कहते हैं। सनातन धर्म्म के अनुसार नश्वर मूर्त्तियों का ध्यान नहीं किया जाता है; अर्थात् आर्य्य-शास्त्रों के अनुसार मूर्त्तिपूजा नहीं की जाती है। मन्त्र-योग का स्थूलध्यान अति गभीर विज्ञान से युक्त है। भग-वद्राज्य के पवित्र आध्यात्मिक भावों के अवलम्बनपूर्वक

* इस ग्रन्थ के "जपवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकारान्तर से उन्हीं भावों के रूपकी कल्पना की जाती है। वे सब रूप नित्य, शुद्ध और सत्य भावमूलक हैं। ❀। इस कारण सनातन धर्म्म का स्थूलध्यान जड़मूर्त्तिपूजा नहीं है।

मनुष्य भावों का दास है। भावशून्य होकर मनुष्य का अन्तःकरण एक मुहूर्त्त भी स्थिर नहीं रह सक्ता है। वैदिक दर्शनों का यह सिद्धान्त है कि भावशुद्धि के द्वारा असत् कार्य्य भी सत् हो जाता है और भावमालिन्य के हेतु सत् कार्य्य भी असत् हो जाता है। उदाहरणरूपेण कहा जासक्ता है कि मनुष्यहत्या एक असत् कार्य्य है, परन्तु यदि वह धर्मयुद्ध के लिये या राजा अथवा साधुजनों की रक्षा के लिये हो तो वह धर्म्मकार्य्य कहलावेगा। अर्थात् मनुष्यहत्यारूप कार्य्य असत् होने पर भी भावशुद्धि के कारण सत् हो जाता है। इसी प्रकार आश्रयदान एक पुण्यकार्य्य है, परन्तु कोई व्यक्ति यदि किसी पापी का पाप जानता हुआ भी उसे आश्रय और प्रश्रय दे तो उससे उसका वह आश्रय तथा अभयदानरूप सत्कार्य्य भी असत् भावजन्य पापों में गिना जावेगा। इस प्रकार सनातनधर्म्म में भावशुद्धि का प्राधान्य यथेष्टरूप से वर्णित है। †।

भावतत्त्व को समझने के लिये इस प्रकार समझना चाहिये कि भोग्य विषय को देखकर इन्द्रिय का सम्बन्ध अनु-

---

❀ इस ग्रन्थ के "ध्यानवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

† भावेन लभ्यते सर्वं भावाधीनमिदं जगत्। भावं विना महाकाल! न सिद्धिर्जायते क्वचित्॥ इति तन्त्रे।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मान किया जाता है। इन्द्रिय की क्रिया को देखकर अन्तःकरण की वृत्ति का अनुमान हो सक्ता है, और तब अन्तःकरण की वृत्ति के मूल में जो भाव रहता है सो अनुभूत होता है। स्त्रीरूप विषय को प्रथम दर्शनेन्द्रियने देखा फिर उससे अन्तःकरण में नाना वृत्तियों का उदय हुआ; परन्तु उस द्रष्टा का भाव यदि मलिन रहा तो वह द्रष्टा उस स्त्रीरूप विषय को इन्द्रियभोग्य मान लेगा और यदि उसके अन्तःकरणमें भाव की शुद्धता रही तो वह उस स्त्रीरूप विषय को मातृरूप में अथवा जगज्जननी की प्रतिकृतिरूप में देखने को समर्थ होगा। इसी प्रकार सनातन धर्म्म में भावका यथार्थ स्वरूप गृहीत होकर भावशुद्धि के बहुत से उपाय निश्चित हुए हैं।

भावराज्य के पवित्र आध्यात्मिक भावों को अवलम्बन-पूर्वक विष्णु, शिव, देवी आदि के स्थूल ध्यान समूह का निर्णय किया गया है। ❀। शक्तिरूपों में से दुर्गादेवी का रूप प्रधान माना गया है। उन्हीं दुर्गादेवी के रूप का भाव समझने के लिये इस प्रकार समझना चाहिये कि महिषासुररूप तमोगुण को सिंहरूपी रजोगुण ने परास्त किया है और ऐसे सिंह के ऊपर आरोहण की हुई सिंहवाहिनी माता दुर्गा हैं जो कि शुद्ध सत्त्वगुणमयी ब्रह्मरूपिणी व दशदिग्-रूपी दशहस्तों में शस्त्रधारणपूर्वक पूर्णशक्तिशालिनी हैं। उनकी एक ओर बुद्धि के अधिष्ठाता गणपति तथा धन की अधिष्ठात्री लक्ष्मी देवी और दूसरी ओर बल के अधिष्ठाता

❀ इस ग्रन्थ के "पंचदेव-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार्त्तिकेय तथा विद्या की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी विराजमान हैं। अतः दुर्गादेवी सर्वशक्तिमयी जगज्जननी महामाया हैं। इसी प्रकार सनातनधर्म्मोक्त स्थूलध्यानसमूह सद्भावमय है।

मन्त्रयोग में जैसा अनेकप्रकार के मन्त्रों का वर्णन है उसी प्रकार पञ्चसगुणदेवात्मक बहुतसे स्थूल मूर्त्तियों का वर्णन है। सगुण ध्यान में पांच प्रकार के ध्यान हैं; यथाः- विष्णु, सूर्य्य, देवी, गणेश, और शिव। *। इस प्रकार पंच भेद का कारण पूज्यपाद महर्षियों ने ऐसा वर्णन किया है कि सृष्टि पांचभौतिक है. इसीसे मनुष्य प्रकृति में भी पांच भेद रहा करते हैं। इसी कारण स्वतन्त्र स्वतन्त्र प्रकृति के लिये पंचोपासना की सृष्टि हुई है। जिस प्रकार प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता को देखकर मन्त्रोपदेश करना उचित है यदि उसी प्रकार साधक की प्रकृति, प्रवृत्ति और योग्यता को देख कर यथायोग्य ध्यान का उपदेश दिया जाय तब साधक की आध्यात्मिक उन्नति होती है।

मन्त्रयोग सोलह अंगों में विभक्त है। †। उन सोलह अंगों का नाम, यथाः—(१) भक्ति, (२) शुद्धि, शुद्धि बहुत प्रकार की है, जैसे दिक्शुद्धि, स्थानशुद्धि, शरीरशुद्धि, अन्तःशुद्धि इत्यादि। (३) आसन अर्थात् बैठनेकी प्रणाली और बैठने का आधार। (४) पंचांग सेवन, यथाः— अपने अपने सम्प्रदाय का गीतापाठ, सहस्रनाम पाठ, स्तोत्र पाठ

* इस ग्रन्थ के "पंचदेव-विज्ञान" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।
† इस ग्रन्थ के "मन्त्रयोगाङ्गवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इत्यादि । (५) आचार अर्थात् जिस रीति से साधक को रहना चाहिये। आचार तीन गुणों के अनुसार तीन प्रकार के हैं। (६) धारणा, जो कि अन्तर् और बहिर्भेद से दो प्रकार की है। (७) दिव्यदेशसेवन, दिव्यदेश सोलह प्रकार के हैं। जिन आधारों में उपासना की जाती है उसे दिव्यदेश कहते हैं यथाः—अग्नि, जल, मूर्त्ति, तस्वीर (पट), हृदय, मन आदिको दिव्यदेश कहा गया है। इसी दिव्य देशका विज्ञान समझने से यह सहज ही से समझ में आवेगा कि सनातनधर्म्मावलम्बिगण किस प्रकार सुगमता के साथ केवल कई एक अवलम्बनविशेष को आश्रय करके निराकार ब्रह्मकी उपासना करते हैं। (८) प्राणक्रिया, प्राणायाम, न्यासादि। (९) मुद्रा,मुद्रासमूह भी भावमय शारीरिक क्रियामात्र है। (१०) तर्पण, (११) हवन, (१२) बलि, (१३) याग, याग भी बहिःपूजा और अन्तःपूजा भेद से दो प्रकार के हैं। (१४) जप, (१५) ध्यान, (१६) समाधि। मन्त्रयोगसमाधि का नाम महाभाव है-। *। इन सोलह अंगों का यथावत् एवं यथाक्रम साधन करने से योगी समाधि में सिद्धिलाभ पूर्वक आत्मसाक्षात्कार करने में समर्थ होते हैं। समाधि के द्वारा भगवत्सान्निध्य प्राप्त होता है। समाधि में ही श्रीभगवान् का स्वरूप उपलब्ध किया जाता है। इन सोलह अंगों से पूर्ण मन्त्रयोग का वर्णन इस संहिता में किया गया है।

* इस ग्रन्थ के "समाधिवर्णन" नामक प्रकरण में द्रष्टव्य है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रयोगसंहिता ।

तन्त्र ।

मङ्गलाचरण ।

(१) सच्चिदानन्दमय परमात्मा जिनसे इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, जिन में ब्रह्माण्ड स्थिर रहता है, और अन्त में जिन में लय होता है ऐसे सर्वशक्तिमान् भगवान् को नमस्कार। जो भगवान् सर्वव्यापक और रूपरहित होने पर भी जिनको वैष्णवगण विष्णुरूप में, गाणपत्यगण गणपतिरूप में, शाक्तगण देवीरूप में, सौर्यगण सूर्यरूप में, और शैवगण शिवरूप में उपासना करते हैं ऐसे लीलाधारी श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार।

---

(१) श्रीसच्चिदानन्दमयात्परात्मनः
समुद्गतं विश्वमिदं यतो विभोः।
स्थितिश्च यस्मिञ्जगतो लयोऽपि च
नमोऽस्तु तस्मै परमात्मने भृशम्॥

एकं रूपविवर्जितं निखिलगं ध्यायन्ति पञ्चात्मना
विष्णुं वैष्णवपुङ्गवा गणपतिं यं गाणपत्या जनाः।
शक्तिं तच्चरणारविन्दरसिकाः सौर्याश्च सूर्यं शिवं
शैवा यं समुपासते नम इदं लीलात्मनेस्तान्मम॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो निर्गुण और वाक् मन से अतीत होने पर भी साधक के हितार्थ सगुणरूप धारण करके उनको परमपद प्राप्त कराते हैं; जो एक और अद्वितीय होने पर भी और भगवद्गीता, भगवतीगीता, गणेशगीता, आदित्यगीता, एवं शिवगीता में अलग अलग निर्णीत होने पर भी एकही हैं ऐसे परमात्मा को नमस्कार।

आर्य ऋषिगणों में से यद्यपि अनेक महापुरुषों ने ही मन्त्रयोग के उपदेश दिये हैं, तथाऽपि उपदेश की अधिकता के कारण नारद, पुलस्त्य, गर्ग, वाल्मीकि, भृगु, बृहस्पति, शुक्र, वशिष्ठ ये ही पूज्य मुनिगण इस मार्ग के सर्वश्रेष्ठ आचार्य समझे जा सकते हैं, इस कारण उनका मङ्गलकारक–नाम–स्मरणपूर्वक मन्त्रयोगसंहिता का वर्णन आरम्भ किया जाता है।

यो निर्गुणो मनोवाचामगोचरतया स्थितः।
सोऽयं साधककल्याणं विधातुं सगुणां तनुम्॥
धृत्वा नयति तानाशु परमं पदमव्ययम्।
एकत्वेऽप्यद्वितीयत्वे यस्य वै परमात्मनः॥
भगवच्छक्तिगणपसूर्यरुद्रान्वितासु वै।
गीतासु वर्णनं भेदात्सोऽधुना संनमस्यते॥

आचार्या मन्त्रयोगे यदपि मुनिगणाः सन्ति चाऽन्ये प्रसिद्धाः
मन्त्रव्याख्याविशेषैर्जगति बहुमतो नारदोऽसौ पुलस्त्यः।
गर्गो वाल्मीकिरार्यो भृगुरमरगुरुः शुक्रदेवो वशिष्ठः
स्मृत्वा नामाष्टकं तच्छुभमनुविहिता संहिता मन्त्रयोगे॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रयोगलक्षण।

(२) सृष्टि नामरूपात्मक होने के कारण नाम रूप के अवलम्बन से ही साधक सृष्टि के बन्धन से अतीत होकर मुक्तिपद प्राप्त कर सकता है। जहां मनुष्य गिरता है उसी भूमि के अवलम्बन से पुनः उठ सकता है। नामरूपात्मक विषय जीव को बन्धन युक्त करते हैं, नामरूपात्मक प्रकृति-वैभव जीव को अविद्या से ग्रास करे रहते हैं। सुतरां अपनी अपनी सूक्ष्म प्रकृति और प्रवृत्ति की गति के अनुसार नाम-मय शब्द और भावमय रूप के अवलम्बन से जो योगसाधन किया जाय उसको मन्त्रयोग कहते हैं। मन्त्रयोग सब अधिकारियों के कल्याणप्रद होने के कारण सर्वजीवहितकारी है। और पञ्चतत्त्वों के प्राधान्य के अनुसार मनुष्यप्रकृति पञ्चधा होने के

(२) नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात्।
बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्तिमाप्नोति साधकः॥
तामेव भूमिमालम्ब्य स्खलनं यत्र जायते।
उत्तिष्ठति जनः सर्वोऽध्यक्षेणैतत्समीक्ष्यते॥
नामरूपात्मकैर्भावैर्बध्यन्ते निखिला जनाः।
अविद्याग्रासिताश्चैव तादृक्प्रकृतिवैभवात्॥
आत्मनः सूक्ष्मप्रकृतिं प्रवृत्तिं चानुसृत्य वै।
नामरूपात्मनोः शब्दभावयोरवलम्बनात्।
यो योगः साध्यते सोऽयं मन्त्रयोगः प्रकीर्त्तितः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कारण मन्त्रयोगोक्त उपासनापद्धति के पांच भेद हैं। वेही पञ्चोपासना कहाते हैं।

अवतार आदि की उपासना भी इन्हीं पांचों के अन्तर्गत है। पञ्चोपासना ब्रह्मोपासना ही है। और मन्त्रयोग वैदिकविज्ञानसम्मत और अभ्रान्त है।

मन्त्रयोग विज्ञान।

(३) जहां कुछ कार्य है वहां अवश्य कम्पन होगा, जहां कम्पन है वहां अवश्य शब्द होना भी सम्भव है। सृष्टिक्रिया भी एक प्रकार का कार्य है, एवं प्रकृति के प्रथम हिल्लोल से जो कम्पन होता है और उससे जो शब्द होता है वही मङ्गलकारी ओङ्काररूप प्रणव है।

श्रेयः सम्पादकत्वेन सर्वेषामधिकारिणाम्।
मन्त्रयोगः समाख्यातः सर्वजीवहितप्रदः॥
प्राधान्यात्पञ्चतत्त्वानां पञ्चधा प्रकृतिर्मता।
उपासना पञ्चविधा मन्त्रयोगस्य कथ्यते॥
मानवप्रकृतेर्भेदात्पञ्चोपासनमिष्यते।
उपासनाऽवताराणामत्रैवान्तर्भवत्यतः॥
उपासनं पञ्चविधं ब्रह्मोपासनमेव तत्।
निश्चितोऽयं मन्त्रयोगो वेदविज्ञानसम्मतः॥

(३) कार्यं यत्र विभाव्यते किमपि तत्स्पन्देन सव्यापकं
स्पन्दश्चाऽपि तथा जगत्सु विदितः शब्दान्वयी सर्वदा।
सृष्टिश्चाऽपि तथादिमाकृतिविशेषत्वादभूत्स्पन्दिनी
शब्दश्चोद्भवत्तदा प्रणव इत्योङ्काररूपः शिवः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस प्रकार साम्यावस्था से सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृति का शब्द ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक ओङ्कार है, उसी प्रकार वैषम्यावस्थापन्न प्रकृति * के नाना शब्द हैं वही नाना शब्द नाना उपासनाओं के नाना बीजमन्त्र हैं। पाञ्चभौतिक सृष्टि होने के कारण सृष्टि पञ्चभाग में विभक्त होती है इस कारण पञ्चोपासना की रीति वेद ने आज्ञा की है। प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार यदि श्रीगुरुदेव मन्त्र का उपदेश देवें अथ च शिष्य की यथारुचि देवोपासना का उपदेश करें तो मुमुक्षु शिष्य शीघ्रही अपने लक्ष्य पर पहुँच सकता है।

साम्यस्थप्रकृतेर्यथैव विदितः शब्दो महानोमिति
ब्रह्मादित्रितयात्मकस्य परमं रूपं शिवं ब्रह्मणः।
वैषम्ये प्रकृतेस्तथैव बहुधा शब्दाः श्रुताः कालतः
ते मन्त्राः समुपासनार्थमभवन्बीजानि नाम्ना तथा॥

जगति भवति सृष्टिः पञ्चभूतात्मिका य-
त्तदिह निखिलसृष्टिः पञ्चभागैर्विभक्ता।
श्रुतिरपि विधिरूपेणादिशन्तीह पञ्च
विविधविहितपूजारीतिभेदान्प्रमाणम्॥
प्रकृतिमिह जनानां सम्परीक्ष्य प्रवृत्तिं
गुरुरिह यदि दद्यान्मन्त्रशिक्षां यथावत्।
रुचिसमुचितदेवोपासनामादिशेद्वा
व्रजति लघु स शिष्यो मोहपारं मुमुक्षुः॥

* साम्यावस्था प्रकृति उसको कहते हैं जहां त्रिगुण की समता रहती है, और सृष्टि नहीं रहती। और वैषम्यावस्था प्रकृति उसको कहते हैं जहां त्रिगुण की समता नष्ट होजाती है और सृष्टि रहती है।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परब्रह्म निराकार है और उनका कोई रूप नहीं है, उस रूपरहित और विराट्पुरुषरूपी परमात्मा के रूप की कल्पना भावद्वारा साधकगण किया करते हैं। अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार भगवद्रूप का ध्यान व बीजमन्त्र के जप से योगी शीघ्रही मुक्तिपद को प्राप्त करलेता है। इसी योग के क्रम को मन्त्रयोग कहते हैं। शास्त्रों में विद्वद्वरों ने सुकौशलपूर्ण कर्म को योग शब्द से वर्णन किया है। इस प्रकार निराकार सर्वाधार ब्रह्म को शुभ रूपयुक्त मानकर जब भक्तिपूर्ण जीव उपासना करेगा तबही वह उपासक कहा सकेगा; तबही क्रमशः मुक्तिपद को प्राप्त कर सकेगा।

साधनप्रशंसावर्णन।

(४) मन्त्रयोग के साधन से साधक को परम अभय पद की प्राप्ति होती है। साधन परम अमृत-

---

आकारो न हि विद्यते किमपि वा रूपं परब्रह्मणो
रूपं तत्परिकल्प्यते जनगणैः किञ्चिज्जगद्रूपिणः।
ध्यायद्भिर्निजवृत्तिमार्गचलितैर्देवं परं रूपिणं
मन्त्रं वा सततं जपद्भिरिह तैर्मुक्तिः परा लभ्यते॥
योगोऽयं परिकथ्यते क्रमयुतः सन्मन्त्रयोगः स्थिरो
योगः कर्मसुकौशलं निगदितं शास्त्रेषु विद्वद्वरैः।
ध्यायन् रूपविवर्जितस्य निखिलाधारस्य रूपं शुभं
देही भक्तिरतः प्रयाति परमां मुक्तिं शिवोपासकः॥

(४) प्राप्तं जीवैः परममभयदं शाश्वतं ब्रह्मयोगैः
लब्धं ज्ञानं परमममृतं साधनैः साधकेन।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रूप ज्ञान का देनेवाला है। इस प्रशंसनीय योगसाधन के अनुसरण करने में कुछ भी क्लेश की प्राप्ति नहीं होती। देवता और मनुष्यों से पूजनीय इसका साधक ब्रह्म को जानता हुआ ब्रह्मरूपही होजाता है।

(दीक्षाप्रयोजन)

(५) दीक्षा सम्पूर्ण जपों का मूल है। और तपश्चर्या का मूल भी दीक्षाही है । सद्गुरु से प्राप्त की हुई दीक्षा सम्पूर्ण कर्मों को सिद्ध करनेवाली है। जो मनुष्य विना दीक्षा ग्रहण किये जप पूजा आदि क्रियाओं को करते हैं उनके वह सब कर्म पत्थर में बोये हुए बीज की नांई फलीभूत नहीं होते। दीक्षाहीन मनुष्य का किया हुआ कोई कर्मानुष्ठान सिद्धि को प्राप्त नहीं होता और न उसकी सद्गति होती है। इस लिये सम्पूर्ण उपाय करके भी गुरु से दीक्षा ग्रहण करना उचित है।

श्लाघ्यो योगो यमनुसरतो नाऽस्ति कश्चिद्विषादो
धन्यो योगी सुरनरगुरुर्ब्रह्मविद् ब्रह्म एव ॥
(५) दीक्षामूलो जपः सर्वो दीक्षामूलं परं तपः ।
सद्गुरोराहिता दीक्षा सर्वकर्माणि साधयेत् ॥
अदीक्षिता ये कुर्वन्ति जपपूजादिकाः क्रियाः ।
न फलन्ति ध्रुवं तेषां शिलायामुप्तबीजवत् ॥
इह दीक्षाविहीनस्य न सिद्धिर्न च सद्गतिः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(श्रीगुरुमहिमा)

(६) ईश्वर के साथ जैसा ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है, उसी प्रकार गुरु के साथ क्रियायोग का सम्बन्ध है। दीक्षाविधि में ईश्वर कारणस्थल और गुरु कार्य-स्थल कहे गये हैं, इस कारण गुरु ब्रह्मरूप हैं। जो लोग गुरु के विषय में मनुष्यबुद्धि, और मन्त्र के विषय अक्षरबुद्धि और देवप्रतिमा में पाषाणबुद्धि रखते हैं वे नरकगामी होते हैं। माता और पिता जन्म देने के कारण पूजनीयहैं किन्तु गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान करानेवाले हैं, इस कारण उनका पूजन पितृगणों से भी अधिक यत्न करके करना उचित है।

---

(६) यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्माण्डस्येश्वरेण वै ।
तथा क्रियाख्ययोगस्य सम्बन्धो गुरुणा सह ॥
दीक्षाविधावीश्वरो वै कारणस्थलमुच्यते ।
गुरुः कार्यस्थलं चाऽतो गुरुर्ब्रह्म प्रगीयते ॥
गुरौ मानुषबुद्धिं तु मन्त्रे चाक्षरभावनाम् ।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत् ॥
जन्महेतू हि पितरौ पूजनीयौ प्रयत्नतः ।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माऽधर्मप्रदर्शकः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गुरुही पिता हैं, गुरुही माता है, गुरुही देवता है, और गुरुही सद्गतिरूप हैं। परमेश्वर के रुष्ट होने पर तो गुरु बचानेवाले हैं परन्तु गुरु के अप्रसन्न होने पर कोई भी त्राणदाता नहीं है॥

(सद्गुरुलक्षण)

(७) सर्व शास्त्रों में पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्ववेत्ता, और मधुरवाक्य भाषण करनेवाले हों, सब अङ्ग जिनके पूर्ण और सुन्दर हों, कुलीन अर्थात् सत्कुलोद्भव हों, दर्शन करने में मङ्गलमूर्त्ति हों, इन्द्रियां जिनकी वशीभूत हों, सर्वदा सत्यभाषण करनेवाले हों, ब्राह्मणवर्ण हों, शान्तमानस अर्थात् जिनका मन कभी चञ्चल नहीं होता हो, माता पिता के समान हित करनेवाले हों, सम्पूर्ण कर्मों में अनुष्ठानशील हों, और गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्न्यासी इन आश्रमों में से किसी आश्रम के हों, एवं भारतवर्षनिवासी हों, इस प्रकार के सर्वगुणसम्पन्न महात्मा गुरु करने योग्य कहे गये हैं।

गुरुः पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥

(७) सर्वशास्त्रपरो दक्षः सर्वशास्त्रार्थवित्सदा।
सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः कुलीनः शुभदर्शनः॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शान्तमानसः।
पितृमातृहिते युक्तः सर्वकर्मपरायणः।
आश्रमी देशवासी च गुरुरेवं विधीयते॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आचार्य और गुरु ये दोनों पर्यायवाचक शब्द हैं, तथाऽपि कार्य के वैलक्षण्य से आचार्य और गुरु इन में भेद भी है। सम्पूर्ण वेद और शास्त्र आदि में सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान शिष्य को करावें वे आचार्य कहाते हैं। जो सर्वदर्शी साधु मुमुक्षुओं के हितार्थ वेदशास्त्रोक्त क्रियासिद्धांश और परमेश्वर की उपासनाके भेदों को यथाधिकार शिष्यों को बतलावें उनको गुरु कहते हैं। दर्शनशास्त्रों की सात भूमि के अनुसार जो वेद और शास्त्र के सकल भेदों को जानते हों, अध्यात्म अधिदैव एवं अधिभूत नामक भावत्रय को भलीभांति समझते हों, और तन्त्र व पुराणों की समाधिभाषा, लौकिकभाषा, परकीयभाषा, इनसे

आचार्यगुरुशब्दौ द्वौ सदा पर्यायवाचकौ।
कश्चिदर्थगतो भेदो भवत्येवं तयोः क्वचित्॥
औपपत्तिकमंशं तु धर्मशास्त्रस्य पण्डितः।
व्याचष्टे धर्ममिच्छूनां स आचार्यः प्रकीर्त्तितः॥
सर्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै।
व्याख्याय धर्मशास्त्रांशं क्रियासिद्धिप्रबोधकम्॥
उपासनाविधेः सम्यगीश्वरस्य परात्मनः।
भेदान्प्रशास्ति धर्मज्ञः स गुरुः समुदाहृतः॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनां शास्त्रोक्तानां विशेषतः।
प्रभेदान्यो विजानाति निगमस्यागमस्य च॥
ज्ञानस्य चाधिकारांस्त्रीन्भावत्रयपरीक्षयतः।
तन्त्रेषु च पुराणेषु भाषायास्त्रिविधां स्थितिम्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भलीभांति परिचित रहकर लोकशिक्षा में निपुण हों, वेही श्रेष्ठ आचार्य कहे जाते हैं। पञ्चतत्त्व के अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्योपासना, शक्त्युपासना, गणेशोपासना, और शिवोपासनारूप पञ्च सगुण उपासना के पूर्ण रहस्यों को समझते हों, और जो योगिराज मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, इन चारों के अनुसार चतुर्विध निर्गुणोपासना को जानते हों ऐसे ज्ञानी, निर्मलमानस, सर्वकार्य में निपुण, त्रितापरहित, जीवों का कल्याण करनेवाले, जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ गुरु कहलाते हैं।

(शिष्यलक्षण)

(८) लोभरहित, स्थिरगात्र अर्थात् जिसका

सम्यग्भेदैर्विजानाति भाषातत्त्वविशारदः।
निपुणो लोकशिक्षायां श्रेष्ठाचार्यः स कथ्यते॥
पञ्चतत्त्वविभेदज्ञः पञ्च भेदान्विशेषतः।
सगुणोपासनां यस्तु सम्यग्जानाति कोविदः॥
चतुष्टयेन भेदेन ब्रह्मणः समुपासनाम्।
गभीरार्थां विजानीते बुधो निर्मलमानसः॥
सर्वकार्येषु निपुणो जीवन्मुक्तस्त्रितापहृत्।
करोति जीवकल्याणं गुरुः श्रेष्ठः स कथ्यते॥
(८) अलुब्धः स्थिरगात्रश्च आज्ञाकारी जितेन्द्रियः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अङ्ग चञ्चल न हो, गुरु का आज्ञाकारी, जितेन्द्रिय, आस्तिक, और गुरु मन्त्र एवं देवता में जिसकी दृढ़ भक्ति हो, ऐसा शिष्य दीक्षा का अधिकारी है। और इन गुणों से विरुद्ध गुण रखनेवाला शिष्य गुरु को दुःख देनेवाला जानना चाहिये।

(निन्द्यगुरुलक्षण)

(९) श्वित्ररोगी, गलितकोढ़वाला, नेत्ररोगी, वामन, जिसके नखों में रोग हो, जिस के दांत कृष्णवर्ण हों, जो स्त्री के वशीभूत हो, जिसका कोई अङ्ग अधिक हो, अङ्गहीन, कपटी एवं रोगी हो, जो बहुत भोजन करनेवाला हो, अत्यन्त बकवाद करनेवाला हो, इन दोषों से जो रहित हों, ऐसे गुरु शिष्य के लिये उचित हैं।

दीक्षा-विवरण ।

(१०) दीक्षा दान करने से पूर्व कुलाकुलचक्र अर्थात्

आस्तिको दृढभक्तश्च गुरौ मन्त्रे च दैवते ॥
एवं विधो भवेच्छिष्य इतरो दुःखकृद्गुरोः ॥
(९) श्वित्री चैव गलत्कुष्ठी नेत्ररोगी च वामनः ।
कुनखः श्यावदन्तश्च स्त्रीजितो ह्यधिकाङ्गकः ॥
हीनाङ्गः कपटी रोगी बह्वाशी बहुजल्पकः ।
एतैर्दोषैर्विमुक्तो यः स गुरुः शिष्यसम्मतः ॥
(१०) कुलाकुलं नामचक्रं राशिचक्रं तथैव च ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवतोद्धारचक्र, नामचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, अकथहचक्र, और अकडमचक्र अर्थात् मन्त्रोद्धारचक्र जो कहागया है उसका विचार करना आवश्यक है। निर्गुण मन्त्रग्रहण अर्थात् मोक्षाभिलाषी साधकगणों के अर्थ केवल उपरोक्त चक्रों का उद्धार करना ही विधि है; उनके लिये ऋणी धनी चक्र के उद्धार करने की आवश्यकता नहीं है। ऋणी धनी चक्र आदि का विचार उन्हींके लिये उपयुक्त है जो साधक प्रवृत्तिमार्गसम्बन्धी वैषयिक कल्याणों को चाहते हों।

दीक्षा के पूर्व दिन मन्त्रज्ञ गुरु शिष्य को बुलाकर पवित्र कुशासन पर उसको बैठाकर निद्रामन्त्र द्वारा उसकी शिखा बांधें, और शिष्य निद्रा लेने के पूर्व उपवासी व जितेन्द्रिय रहकर तीनवार उस मन्त्र का जप करे एवं गुरुपादुका का स्मरण करके शयन करे। मन्त्र यह है।

नक्षत्राकथहचक्रमकडमं चक्रमीरितम् ॥
तत्र चेन्निर्गुणो मन्त्रो नान्यच्चक्रं विचिन्तयेत्।
तथा च धनिमन्त्रं न गृह्णीयाद् यत्प्रयोजनम्॥
गुरुर्दीक्षापूर्वदिने स्वशिष्यमभिमन्त्रयेत्।
दर्भशय्यां परिष्कृत्य शिष्यं तत्र निवेशयेत्॥
स्वापमन्त्रेण मन्त्रज्ञः शिखां तस्य प्रबन्धयेत्।
तन्मन्त्रं स्वापसमये पठेद्वारत्रयं शिशुः॥
श्रीगुरोः पादुके ध्यात्वा तूपवासी जितेन्द्रियः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥

इस मन्त्र के पाठपूर्वक शयन कर प्रातः समय उठकर गुरु के निकट उपस्थित हो और गुरुदेव की आज्ञा पाकर अपने स्वप्न में देखे हुए पदार्थों को निवेदन कर शुभाऽशुभ फल को ज्ञात करे ।

यदि स्वप्न में कन्या, छत्र, रथ, प्रदीप, प्रासाद, कमल, नदी, हस्ती, वृषभ, माला, समुद्र, फूलयुक्त वृक्ष, पर्वत, घोड़ा, पवित्र मांस, सुरा, और आसव, इन पदार्थों का दर्शन शिष्य को हो तो मन्त्र की सिद्धि समझना उचित है । गुणवान् ब्राह्मण एक वर्ष, क्ष-

---

नमो जय त्रिनेत्राय पिङ्गलाय महात्मने ।
रामाय विश्वरूपाय स्वप्नाधिपतये नमः ॥
स्वप्ने कथय मे तथ्यं सर्वकार्येष्वशेषतः ।
क्रियासिद्धिं विधास्यामि त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
स्वप्ने शुभाऽशुभं दृष्टं पृच्छेत्प्रातः शिशुं गुरुः ।
कन्यां छत्रं रथं दीपं प्रासादं कमलं नदीम् ।
कुञ्जरं वृषभं माल्यं समुद्रं फलिनं द्रुमम् ॥
पर्वतं तुरगं मेध्यमाममांसं सुरासवम् ।
एवमादीनि सर्वाणि दृष्ट्वा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

त्रिय दो वर्ष, वैश्य तीन वर्ष, और शूद्र चार वर्ष तक गुरुदेव के सहवास करने से शिष्य की योग्यता को प्राप्त हुआ करता है; तथाऽपि गुरु सर्वशक्तिमान् व ईश्वररूप हैं वे जब चाहें तभी विना देश काल विचारे शिष्य को उपदेश कर सकते हैं, यदि सौभाग्यवश सिद्ध पुरुष का दर्शन मुमुक्षु को होजाय तो तत्क्षण में शिष्य को दीक्षाग्रहण करना उचित है, उस समय काल आदि का विचार करना अनावश्यकहै।

दीक्षोपयोगी काल और देश।

(मास निर्णय)

(११) चैत्रमास में दीक्षा ग्रहण करने से समस्त पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। वैशाख में रत्नलाभ, ज्येष्ठमास में मरण, आषाढ़मास में बन्धुनाश, श्रावणमास में

वर्षेणैकेन योग्यः स्याद्विप्रो गुणसमन्वितः।
वर्षद्वयेन राजन्यो वैश्यस्तु वत्सरैस्त्रिभिः॥
चतुर्भिर्वत्सरैः शूद्रः कथिता शिष्ययोग्यता।
तथा गुरुश्च स्वाधीनः सर्वशक्तियुतो विभुः॥
यदि भाग्यवशेनैव सिद्धो हि पुरुषो मिलेत्।
तदैव दीक्षां ग्रहणीयात्त्यक्त्वा कालविचारणाम्॥
(११)मन्त्रारम्भस्तु चैत्रे स्यात्समस्तपुरुषार्थदः।
वैशाखे रत्नलाभः स्याज्ज्येष्ठे च मरणं भवेत्॥
आषाढे बन्धुनाशः स्यात्पूर्णायुः श्रावणे भवेत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दीर्घायु, भाद्रमास में सन्ताननाश, आश्विन मास में रत्नसञ्चय, कार्त्तिकमास और अग्रहणमास में मन्त्र की सिद्धि, पौषमास में शत्रुपीड़ा, माघमास में मेधा की वृद्धि, और फाल्गुनमास में मन्त्र ग्रहण करने से सकल मनोरथ पूर्ण होते हैं। परन्तु यदि उत्तम मास भी मलमास होजाय तो वह मास त्याग करने योग्य है।

(वारनिर्णय)

(१२) रविवार में मन्त्र ग्रहण करने से वित्तलाभ, सोमवार में शान्ति, और मङ्गलवार में आयुक्षय हुआ करता है; इस कारण मङ्गलवार की दीक्षा निषिद्ध है। बुधवार में सौन्दर्यलाभ, वृहस्पतिवार में ज्ञानवृद्धि, शुक्रवार में सौभाग्यलाभ, और शनिवार में दीक्षा ग्रहण करने से यश की हानि होती है।

प्रजानाशो भवेद्भाद्रे आश्विने रत्नसञ्चयः ॥
कार्त्तिके मन्त्रसिद्धिः स्यान्मार्गशीर्षे तथाभवेत्।
पौषे तु शत्रुपीडा स्यान्माघे मेधाविवर्द्धनम् ॥
फाल्गुने सर्वकामाः स्युर्मलमासं विवर्जयेत् ।
(१२)रविवारे भवेद्वित्तं सोमे शान्तिर्भवेत्किल ।
आयुरङ्गारके हन्ति तत्र दीक्षां विवर्जयेत् ॥
वुधे सौन्दर्यमाप्नोति ज्ञानं स्यात्तु वृहस्पतौ ।
शुक्रे सौभाग्यमाप्नोति यशोहानिः शनैश्चरे ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(तिथि-निर्णय)

(१३) प्रतिपद् तिथि में मन्त्र ग्रहण करने से ज्ञान नाश, द्वितीया में ज्ञानवृद्धि, तृतीया में शुद्धता-प्राप्ति, चतुर्थी में वित्तनाश, पञ्चमी में बुद्धि की वृद्धि, षष्ठी में ज्ञान का क्षय, सप्तमी में सुख लाभ, अष्टमी में बुद्धिनाश, नवमी में शरीरक्षय, दशमी में राज-सौभाग्य की प्राप्ति, एकादशी में पवित्रता, द्वादशी में सर्व कार्य सिद्धि, त्रयोदशी में दरिद्रता, चतुर्दशी में तिर्यक् योनि की प्राप्ति, मासके अवसान में कार्यहानि, और पक्ष के अन्त में दीक्षा ग्रहण करने से धर्म की वृद्धि हुआ करती है। मन्त्रग्रहण में अस्वाध्याय अर्थात् जिन दिनों में वेदपाठ निषिद्ध है वे दिन भी परित्याग करने योग्य हैं। सन्ध्या गर्जन का

---

(१३) प्रतिपद्विहिता दीक्षा ज्ञाननाशकरी मता।
द्वितीयायां भवेज्ज्ञानं तृतीयायां शुचिर्भवेत्॥
चतुर्थ्यां वित्तनाशः स्यात्पञ्चम्यां बुद्धिवर्द्धनम्।
षष्ठ्यां ज्ञानक्षयः सौख्यं लभते सप्तमीतिथौ॥
अष्टम्यां बुद्धिनाशः स्यान्नवम्यां वपुषः क्षयः।
दशम्यां राजसौभाग्यमेकादश्यां शुचिर्भवेत्॥
द्वादश्यां सर्वसिद्धिः स्यात्त्रयोदश्यां दरिद्रता।
तिर्यग्योनिश्चतुर्दश्यां हानिर्मासावसानके॥
पक्षान्ते धर्मवृद्धिः स्यादस्वाध्यायं विवर्जयेत्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दिन, भूकम्प का दिन, उल्कापात का दिन, आदि अस्वाध्याय दिवस श्रुति में कहे गये हैं यही त्यागने योग्य हैं।

(नक्षत्र-निर्णय)

(१४) अश्विनी नक्षत्र में दीक्षा ग्रहण करने से सुखलाभ, भरणी में मरण, कृत्तिका में दुःख, रोहिणी में विद्या की प्राप्ति, मृगशिर में सुख, आर्द्रा में बन्धु-नाश, पुनर्वसु में पूर्ण धन की प्राप्ति, पुष्य में शत्रु का नाश, अश्लेषा में मृत्यु, मघा में दुःख का नाश, पूर्वाफाल्गुनी में सौन्दर्य, उत्तराफाल्गुनी में ज्ञान-प्राप्ति, हस्त में धन की प्राप्ति, चित्रा में ज्ञान की प्राप्ति, स्वाती में शत्रु का नाश, विशाखा में सुख की

सन्ध्यागर्जितनिर्घोषभूकम्पोल्कानिपातने ॥
एतानन्यांश्च दिवसाञ्छ्रुत्युक्तान्परिवर्जयेत् ॥

(१४) अश्विन्यां सुखमाप्नोति भरण्यां मरणं ध्रुवम् ।
कृत्तिकायां भवेद्दुःखी रोहिण्यां वाक्पतिर्भवेत् ॥
मृगशीर्षे सुखावाप्तिरार्द्रायां बन्धुनाशनम् ।
पुनर्वसौ धनाढ्यः स्यात्पुष्ये शत्रुविनाशनम् ॥
अश्लेषायां भवेन्मृत्युर्मघायां दुःखमोचनम् ।
सौन्दर्यं पूर्वफाल्गुन्यां प्राप्नोति च न संशयः ॥
ज्ञानं चोत्तरफाल्गुन्यां हस्तर्क्षे च धनी भवेत् ।
चित्रायां ज्ञानसिद्धिःस्यात् स्वात्यां शत्रुविनाशनम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्ति, अनुराधा में बन्धु की वृद्धि, ज्येष्ठा में सन्तति की हानि, मूलमें कीर्त्ति की वृद्धि, पूर्वाषाढ़ा और उत्तराषाढ़ा में कीर्त्ति की प्राप्ति, श्रवण में दुःख, धनिष्ठा में दरिद्रता, शतभिषा में बुद्धिलाभ, पूर्वभाद्र और उत्तरभाद्र में सुख की प्राप्ति, और रेवती नक्षत्र में मन्त्रग्रहण करने से कीर्त्ति की वृद्धि हुआ करती है।

(योग-निर्णय)

(१५) प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, वृद्धि, ध्रुव, सुकर्मा, साध्य, शुक्ल, हर्षण, वरीयान्, शिव, सिद्ध, ब्रह्मा, इन्द्र, इन षोड़श योगों में दीक्षाग्रहण करने से दीक्षा सफलता को प्राप्त होती है।

विशाखायां सुखं चैवाऽनुराधा बन्धुवर्द्धिनी।
ज्येष्ठायां सुतहानिः स्यान्मूलर्क्षे कीर्त्तिवर्धनम्॥
पूर्वाषाढोत्तराषाढे भवेतां कीर्त्तिदायिके।
श्रवणायां भवेद्दुःखी धनिष्ठायां दरिद्रता॥
बुद्धिः शतभिषायां स्यात्पूर्वभाद्रे सुखी भवेत्।
सौख्यं चोत्तरभाद्रे च रेवत्यां कीर्त्तिवर्द्धनम्॥

(१५) योगाःस्युःप्रीतिरायुष्मान्सौभाग्यःशोभनोधृतिः।
वृद्धिर्ध्रुवः सुकर्मा च साध्यः शुक्लश्च हर्षणः॥
वरीयांश्च शिवः सिद्धो ब्रह्मा इन्द्रश्च षोडश॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(करण-निर्णय)

(१६) बव, बालव, कौलव, तैतिल, और वनिज, यह सब करण दीक्षाग्रहण के लिये मङ्गलकारी हुआ करते हैं, यह सब तन्त्रों में प्रतिपादित है।

(लग्न-निर्णय)

(१७) वृष, सिंह, कन्या, धनु, और मीन इन पांचो लग्नों में और चन्द्र तारा की अनुकूलता देख कर दीक्षादान उचित है। वृष, सिंह, वृश्चिक, और कुम्भ, यही स्थिर लग्न हैं, ये विष्णुमन्त्रग्रहण में शुभकारी हैं। चर लग्न अर्थात् मेष, कर्कट, तुला, और मकर शिवमन्त्रग्रहण में शुभजनक हैं। शक्तिदीक्षा में द्विस्वभावगत लग्न अर्थात् मिथुन, कन्या, धनु, और मीन, मङ्गलकारी हैं। लग्न के तृतीय, षष्ठ, और ए-

---

(१६) बव-बालव-कौलव-तैतिल-वणिजस्तु पञ्च।
करणानि शुभान्येव सर्वतन्त्रेषु भाषितम्॥

(१७) वृषे सिंहे च कन्यायां धनुर्मीनाख्यलग्नके।
चन्द्रतारानुकूल्ये च कुर्याद्दीक्षाप्रवर्त्तनम्॥
स्थिरलग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं शुभम्।
द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कादश स्थान में पापग्रह, और लग्न में और उस के चतुर्थ, सप्तम, दशम, नवम, और पञ्चम स्थान में शुभग्रह रहने से दीक्षाग्रहण कल्याणकारी हुआ करता है। दीक्षाकार्य में वक्र ग्रह सर्वनाशक होने के कारण त्याग करने योग्य हैं।

(पक्ष-निर्णय)

(१८) शुक्लपक्ष में दीक्षा शुभ और कृष्णपक्ष की पञ्चमी तक भी दीक्षा मङ्गलकारिणी हुआ करती है। प्रवृत्तिमार्ग के साधकों के अर्थ शुक्लपक्ष और निवृत्तिमार्ग के साधकों के लिये कृष्णपक्ष उपयोगी होता है। निन्दित मास में भी यदि ग्रहण का अवसर मिले तो दीक्षा शुभदा होती है। सूर्यग्रहण के समान उत्तम काल दीक्षाग्रहण के अर्थ इस संसार में और कोई भी नहीं होसकता।

त्रिषडायगताः पापाः शुभाः केन्द्रत्रिकोणगाः।
दीक्षायां तु शुभाः सर्वे वक्रस्थाःसर्वनाशकाः॥

(१८) शुक्लेपक्षे शुभादीक्षा कृष्णेऽप्यापञ्चमादिनात्।
भोगकामैः शुक्लपक्षे मुक्तिकामैः शुभं परे॥
निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षोक्ता ग्रहणे शुभा।
सूर्यग्रहणकालस्य समानो नास्ति भूतले॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(दीक्षास्थान–निर्णय)

(१६) गोशाला में, गुरु के घर में, देवमन्दिर में, वनमें, पुण्यक्षेत्र (तीर्थ) में, बगीचे में, नदी के तीर पर, धात्री (आमलकी) और बिल्ववृक्ष के समीप में, पर्वत के ऊपर और गुफा में, दीक्षा होनी चाहिये। गंगातट पर दीक्षा कोटि कोटि गुणित फल प्रदान करनेवाली होती है। अथवा जहां गुरुदेव दीक्षा देना चाहें वही स्थान शुभ है क्योंकि गुरुदेव से पर और कोई संसार में नहीं है, उनका वाक्य वेदवाक्य के समान है।

मन्त्रनिर्णय–विधि।

(२०) ऋतम्भरा बुद्धि से अथवा अनेक प्रकार के चक्रों की सहायता से मन्त्रों का निर्णय करके गुरुदेव शिष्यों को उपदेश देवें। मन्त्र एकाक्षर, अधिकाक्षर, ससेतुक, शाखा पल्लवसंयुक्त आदि अनेक प्रकार के होते हैं उन सबों में से विचारपूर्वक निर्णय

---

(१६) गोशालायांगुरोर्गेहे देवागारे च कानने।
पुण्यक्षेत्रे तथोद्याने नदीतीरे च दीक्षणम्॥
धात्रीविल्वसमीपे च पर्वताग्रे गुहासु च।
गङ्गायाश्च तटे वाऽपि कोटिकोटिगुणं भवेत्॥
अथवा गुरुरेवास्य दीक्षयेद्यत्र तच्छुभम्।
गुरोःपरतरं नास्ति तद्वाक्यं श्रुतिसन्निभम्॥

(२०) ऋतम्भरधियावापि नानाचक्रसहायतः।
मन्त्रानाशु विनिर्णीय शिष्यानुपदिशन्तिते॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

करलिये जावें। उपदेश देने में कुलाकुलचक्र, राशिचक्र, नक्षत्रचक्र, आदि अनेक प्रकार के चक्र सहायक होते हैं। कहीं सब चक्रों की आवश्यकता होती है और कहीं एकही चक्र की आवश्यकता होती है। इसको योगपारगामी गुरुओं को जानना चाहिये।

(कुलाकुल-चक्र)

(२१) मन्त्रशास्त्रज्ञों के वास्ते कुलाकुलचक्र कहते हैं। पांच ह्रस्व, पांच दीर्घ, बिन्द्वन्तसन्धिसम्भव अक्षर, कवर्गादि पांचवर्ग, ष, क्ष, ल, स, ह ये सब वायु अग्नि पृथिवी जल और आकाशरूप हैं। अर्थात् पांच ह्रस्व स्वर और पांच दीर्घस्वर, अं और सन्धि सम्भव ए, ऐ, ओ, औ, य, र, ल, व, श तथा कवर्गादि पांचों वर्गों के पांच पांच अक्षर एवं ष क्ष ल स ह, ये पचास अक्षर पांचों तत्त्वों में विभाग किये गये हैं।

एकाक्षराः सेतुयुक्ता मन्त्राश्चाप्यधिकाक्षराः ।
शाखापल्लवसंयुक्ता निर्णेयास्ते विचारतः ॥
चक्रं कुलाकुलं नाम राशिनक्षत्रचक्रकम् ।
एवमाद्यानि साहाय्यं कुर्वन्ति ह्युपदेशने ॥
अपेक्षितानि चक्राणि निखिलान्यपि कुत्रचित् ।
क्वचिदेकमिति ज्ञेयं गुरुभिर्योगपारगैः ॥

(२१) कुलाकुलस्य भेदो हि प्रोच्यते मन्त्रिणामिह ।
वाय्वग्निभूजलाकाशाः पञ्चाशल्लिपयः क्रमात् ॥
पञ्चह्रस्वाः पञ्चदीर्घा बिन्द्वन्ताः सन्धिसम्भवाः ।
कादयः पञ्चशः षक्षलसहान्ताः प्रकीर्तिताः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अ आ ए क च ट त प य ष ये मारुत हैं, इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्ष ये आग्नेय हैं, उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल ल ये पार्थिव हैं, ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व स ये वारुण हैं और लृ ॡ अं ङ ञ ण न म श ह ये नाभस हैं।

कुलाकुलचक्र।

वायु	अग्नि	पृथ्वी	जल	आकाश
अ	इ	उ	ऋ	लृ
आ	ई	ऊ	ॠ	ॡ
ए	ऐ	ओ	औ	अं
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ल	स	ह

अ आ ए क च ट त प य षा मारुताः।
इ ई ऐ ख छ ठ थ फ र क्षा आग्नेयाः।
उ ऊ ओ ग ज ड द ब ल लाः पार्थिवाः।
ऋ ॠ औ घ झ ढ ध भ व सा वारुणाः।
लृ ॡ अं ङ ञ ण न म श हा नाभसाः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

साधक के नाम का पूर्वाक्षर और मंत्र का पूर्वाक्षर यदि समान भूतदेवता अर्थात् एक कोष्ठक में आवे तो स्वकुल जानना चाहिये । पृथिवी का जल मित्र है और अग्नि का वायु मित्र है । पृथिवी का वायु तथा अग्नि रिपु है । एवं जल का अग्नि रिपु है। आकाश सबका मित्र है। रिपु होने पर मन्त्र नहीं देना चाहिये, स्वकुल और मित्र होनेपर देना चाहिये। इस शास्त्रमें गुह्यातिगुह्यविषय है और तत्त्वज्ञान और भी गुह्यातिगुह्य है। अनुकूल मंत्रों का तत्त्वज्ञान से निर्णय होता है और कुलाकुलचक्र से तत्त्वज्ञान होता है अतः कुलाकुलचक्र सिद्धिदायी कहागयाहै।

साधकस्याक्षरं पूर्वं मन्त्रस्याऽपि तदक्षरम् ।
यद्येकभूतदैवत्यं जानीयात् स्वकुलं हि तत् ॥
भौमस्य वारुणं मित्रं आग्नेयस्यापि मारुतम् ।
मारुतम्पार्थिवानाञ्च * आग्नेयञ्चाम्भसां रिपुः ॥
नाभसं सर्वमित्रं स्याद्विरुद्धं नैव शीलयेत् ॥
गुह्यातिगुह्यविषयास्तत्त्वज्ञानं विशेषतः ।
मन्त्राणाञ्चाऽनुकूलानां तत्त्वज्ञानेन निर्णयः ॥
कुलाकुलाख्यचक्रेण तत्त्वज्ञानं प्रजायते ।
अतः कुलाकुलं चक्रं सिद्धिदायि प्रकीर्तितम् ॥

* पार्थिवानाञ्चेति चकारात् आग्नेयं पार्थिवानां रिपुः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(तन्त्रान्तर का कुलाकुलचक्रविज्ञान)

(२२) सृष्टि पञ्चभूतात्मक है अर्थात् पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, और आकाश, इन पांच तत्त्वों से सृष्टि निर्मित है इस कारण मनुष्यों के लिये पञ्चदेवोपासना का विधान है। उपासना का रहस्य योगपारंगत श्रीगुरुदेवही समझते हैं। इस कारण पञ्चतत्त्वरहस्य-प्रकाशक कुलाकुलचक्र परमहितकर है उससे मन्त्र का कुल निर्णय और देवता का कुल निर्णय दोनों कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। पाञ्चभौतिक शक्ति के तारतम्यसे मन्त्राधिकारनिर्णय और पञ्चभेदात्मक अधिकार के भेद से उपासनाधिकारनिर्णय इस चक्र द्वारा सुसिद्ध होता है। यह चक्र परम हितकर है।

---

(२२) पञ्चभूताज्जगत्सृष्टं पञ्च देवा हि मानवैः।
पूज्यन्ते तद्रहस्यं तु ज्ञायते योगपारगैः॥
पञ्चतत्त्वरहस्यानि प्रकाशयति तत्त्वतः।
अतः कुलाकुलं चक्रं परमं मङ्गलं स्मृतम्॥
मन्त्राणां देवतानां च कुलनिर्णयकारकम्।
पाञ्चभौतिकशक्तेर्हि भेदान्मन्त्रविनिर्णयः॥
पञ्चाधिकारभेदेन चोपासनविनिश्चयः।
चक्रेणैतेन सिद्ध्यन्ति तस्मादेतच्छुभावहम्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(राशिचक्र)

(२३) पहले पूर्व और पश्चिम भाग में दो रेखा खैंचकर, इन दोनों रेखाओं के बीच से उत्तर व दक्षिण की ओर दो और रेखायें करके, ईशान आदि चतुष्कोण में और चार रेखा खैंचकर राशिचक्र अङ्कित करना चाहिये। इस चक्र के द्वादश घरों में यथानियम द्वादश राशि कल्पना करके मेष आदि क्रम के अनुसार वर्णों को लिखना उचित है। मेष में चार, वृष के घर में तीन, मिथुन में तीन, कर्कट में दो, सिंह में दो, कन्या में दो, तुला में पांच, वृश्चिक में पांच, धनु में पांच, मकर में पांच, कुम्भ में पांच, मीन में चार और अवशिष्ट शकार आदिवर्ण कन्याराशि के घरमें लिखने योग्य हैं। इस प्रकार से अकारादि वर्ण संस्थापनपूर्वक राशिचक्र पर विचार किया जाता है।

---

(२३) रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात्,
तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात्।
ऐशान्यमारभ्य निशाचरान्तं,
कुर्याद्धि रेखामनिलानलान्ताम्॥
वेदाग्निवह्नियुगलश्रवणाक्षिपञ्च,
पञ्चेषुवाणशरवेदमितादिवर्णान्।
मेषादिराशिभवनेषु लिखेच्च सर्वान्,
कन्यागृहे प्रविलिखेदथ शादिवर्णान्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

राशिचक्र ।

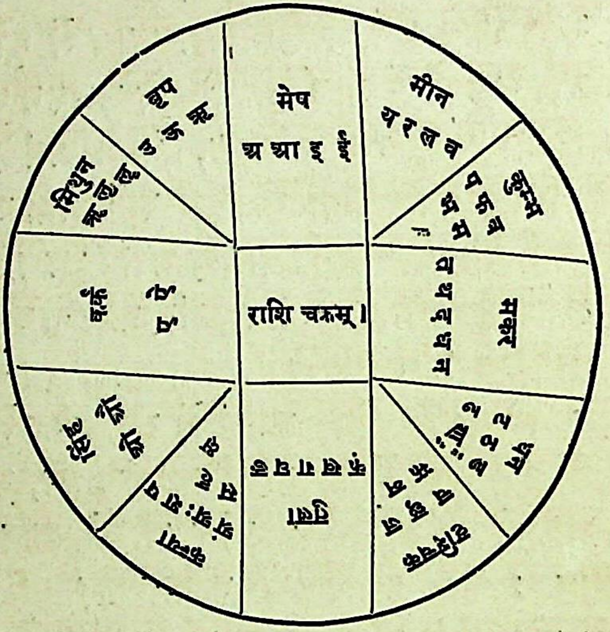

अपने राशि के अनुकूल मन्त्र ग्रहण करने से मङ्गल की प्राप्ति हुआ करती है इसलिये विद्वान् जनों को उचित है कि नाम का आदिवर्ण और मन्त्र का आदि वर्ण लेकर अपने राशि से मन्त्रराशिपर्यन्त गणना द्वारा राशि की शुद्धता का विचार अवश्य करें। इस प्रकार की गणना द्वारा षष्ठ (शत्रु) अष्टम (मृति) और द्वादश (व्यय) राशि स्थित मन्त्र त्याग करने

राशीनां शुद्धता ज्ञेया त्यजेच्छत्रुं मृतिं व्ययम् ।
स्वराशेर्मन्त्रराश्यन्तं गणनीयं विचक्षणैः ॥
तेन मन्त्राद्यवर्णेन नाम्नश्चाद्यक्षरेण च ।
गणयेद्यदि षष्ठो वाऽप्यष्टमो द्वादशस्तु वा ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

योग्य हैं। क्योंकि उन राशि स्थित मन्त्रों के ग्रहण करने से अमङ्गल हुआ करता है। लग्न, धन, भ्रातृ, बन्धु, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय, और व्यय, लग्नादि द्वादश राशि की यह द्वादश सञ्ज्ञा है। इन संज्ञाओं के शब्दार्थ के अनुसार शुभाशुभ फल निर्णय किया जा सकता है। विष्णुउपासना-विषय में बन्धु के स्थान में शत्रु और शत्रु के स्थान में बन्धु ऐसा समझना चाहिये।

जन्मराशि स्थित मन्त्र से मन्त्रसिद्धि, धनस्थान-स्थित मन्त्र से धनवृद्धि, भ्रातृस्थान से भ्रातृवृद्धि, बन्धुस्थान से बन्धुप्रियता, पुत्रस्थान से पुत्रलाभ, शत्रुस्थान से शत्रु की वृद्धि, कलत्रस्थान से मध्यम फल, मृत्युस्थान से मृत्यु, धर्मस्थान से धर्मवृद्धि, कर्म

रिपुर्मन्त्राद्यवर्णः स्याच्चेन तस्याऽहितं भवेत्।
लग्नं धनं भ्रातृबन्धू * पुत्रशत्रू + कलत्रकम्॥
मरणं धर्मकर्मायव्यया द्वादशराशयः।
नामानुरूपमेतेषां शुभाशुभफलं लभेत्॥
लग्ने सिद्धिस्तथा नित्यं धने धनसमृद्धिदम्।
भ्रातरि भ्रातृवृद्धिः स्याद्बान्धवे बान्धवप्रियः॥
पुत्रे च पुत्रवृद्धिः स्याच्छत्रौ शत्रुविवर्धनम्।
कलत्रे मध्यमं प्रोक्तं मरणे मरणं भवेत्॥

---

* वैष्णवमन्त्रे तु बन्धुस्थाने शत्रुस्थानमिति।
+ वैष्णवे तु शत्रुस्थाने च बन्धुस्थानमिति पाठान्तरम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्थान से कार्यसिद्धि, आयस्थान से धन सम्पत्ति, और व्ययस्थान से सञ्चित धन का नाश हुआ करता है।

(नक्षत्रचक्र)

(२४) उत्तरसे दक्षिणओर को चार रेखा अङ्कित करके, उनके बीच पूर्व पश्चिम भाग में दश रेखा खैंचकर, उन सत्ताईस कोष्ठों में अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों को यथाक्रम से स्थापन करके अकारादि क्षकारपर्यन्त सब वर्णों को नियमपूर्वक स्थापन करना उचित है। प्रथम कोष्ठ में दो वर्ण, द्वितीय कोष्ठ में एक वर्ण, तृतीय कोष्ठ में तीन वर्ण, चतुर्थ में चार, पञ्चम में एक, षष्ठ में एक, सप्तम में दो, अष्टम में एक, नवम में दो, दशम में दो, एकादश में एक, द्वादश में दो, त्रयोदश में दो, चतुर्दश में दो, पञ्चदश में एक, षोडश में दो, सप्तदश में

धर्मे च धर्मवृद्धिःस्यात्सिद्धिदः कर्मसंस्थितः।
आये च धनसम्पत्तिर्व्यये च सञ्चितव्ययः॥
(२४) उत्तराद्दक्षिणाग्रां तु रेखां कुर्याच्चतुष्टयीम्।
दशरेखाः पश्चिमाग्राः कर्त्तव्या चक्रहेतवे॥
अश्विन्यादिक्रमेणैव विलिखेत्तारकाः पुनः।
अकारादिक्षकारान्तान्द्विचन्द्रवह्निवेदकान्॥
भूमीन्दुनेत्रचन्द्रांश्च अश्लेषान्तं खगौ प्रिये।
द्विभूनेत्रनेत्रयुग्मांश्चेन्दुनेत्राग्निधात्मकान्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीन, अष्टादश में एक, ऊनविंशति में तीन, विंशति में एक, एकविंशति में एक, द्वाविंशति में एक, त्रयोविंशति में दो, चतुर्विंशति में एक, पञ्चविंशति में दो, षड्विंशति में तीन और सप्तविंशति में चार वर्ण स्थापित कियेजाते हैं।

पूर्व फाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वभाद्र, उत्तर फाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तरभाद्र, भरणी, आर्द्रा, और रोहिणी, इन नौ नक्षत्रों के मानुषगण हैं। ज्येष्ठा, शतभिषा, मूल, धनिष्ठा, अश्लेषा, कृत्तिका, चित्रा, मघा, और विशाखा इन ९ नौ नक्षत्रों के राक्षसगण हैं। अश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, मृगशिरा और श्रवण, इन नौ ९ नक्षत्रों के देवगण हैं।

मघादिकं च ज्येष्ठान्तं द्वितीयं नवतारकम्।
वह्निभूमीन्दुचन्द्रांश्च युग्मेन्दुनेत्रवह्निकान्॥
वेदेनभेदितान्वर्णान्नेवत्यन्तं गतान्क्रमात्।
पूर्वोत्तरत्रयं चैव भरण्यार्द्राऽथ रोहिणी।
इमानि मानुषाण्याहुर्नक्षत्राणि मनीषिणः॥
ज्येष्ठाशतभिषामूलाधनिष्ठाश्लेषकृत्तिकाः।
चित्रामघाविशाखाः स्युस्तारा राक्षसदेवताः॥
अश्विनी रेवती पुष्या स्वाती हस्ता पुनर्वसूः।
अनुराधा मृगशिरः श्रवणा देवतारकाः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नक्षत्रचक्र ।

अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	अश्लेषा
अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
देव	मानुष	राक्षस	मानुष	देव	मानुष	देव	देव	राक्षस
मघा	पूर्वाफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाती	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट ठ	ड	ढ ण	त थ द	ध
राक्षस	मानुष	मानुष	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस
मूल	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती
न फ फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह	ल क्ष अं अः
राक्षस	मानुष	मानुष	देव	राक्षस	राक्षस	मानुष	मानुष	देव

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्वजाति में परम प्रीति, भिन्न जाति में मध्यम प्रीति, राक्षस और मनुष्य में विनाश, और राक्षस व देवता में शत्रुता जानना उचित है।

जन्मनक्षत्र और मन्त्र का आदि अक्षर जिस घर में आवेगा उस कोष्ठगत नक्षत्र के साथ मिलाकर गणना करना योग्य है। यदि मन्त्र और मन्त्रग्रहीता एक गण हो तो मन्त्र शुभदायी समझना उचित है और यदि शिष्य का मानुषगण हो और मन्त्र का देवगण हो तौभी वह मन्त्र मङ्गलदायी होता है। शत्रुताकारक और मृत्युकारक मन्त्र ग्रहण करने योग्य नहीं है। जन्म, सम्पत्, विपत्, क्षेम, प्रत्यरि, साधक, वध, मित्र और परम मित्र इस रूप से जन्मनक्षत्र से लेकर मन्त्रनक्षत्र पर्यन्त पुनः पुनः गणना करनेयोग्य है। यदि जन्मनक्षत्र से मन्त्रनक्षत्र जन्म, तृतीय पञ्चम अथवा सप्तम हो तो वह त्याग करनेयोग्य है, षष्ठ, अष्टम, द्वितीय, नवम और चतुर्थ मन्त्र शुभ-

---

स्वजातौ परमाप्रीतिर्मध्यमा भिन्नजातिषु।
रक्षोमानुषयोर्नाशो वैरं दानवदेवयोः॥
जन्मसम्पद्विपत्क्षेमं प्रत्यरिः साधको वधः।
मित्रं परममित्रं च जन्मादीनि पुनः पुनः॥
रसाष्टनवभद्राणि युग्म–युग्म–गतानि च।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दायी हुआ करते हैं। इन पांच स्थान के मन्त्रों से अतिरिक्त अन्य सब मन्त्र अशुभ समझने योग्य हैं, अतएव पण्डितगण जन्म आदि मन्त्र को त्याग करदेवें। जन्मनक्षत्र से मिलाकर पूर्व–कथितानुसार गणना करने से इस चक्र का उद्धार होता है।

(अकथह चक्र)

(२५) पहले चार कोष्ठ जिसमें हों ऐसा एक चतुष्कोण कोष्ठ निर्माण करके, पुनः उसमें चार कोष्ठोंको बना कर इन षोड़श कोष्ठों में इस रीति से अकारादि वर्णों का विन्यास करना उचित है। प्रथम कोष्ठ में अ, तृतीय में आ, एकादशमें इ, नवम में ई, द्वितीय में उ, चतुर्थ में ऊ, द्वादश में ऋ, दशम में ॠ, षष्ठ में ऌ, अष्टम में ॡ, षोड़श में ए, चतुर्दश में ऐ, पञ्चम में ओ, सप्तम में औ, पञ्चदश में अं, और त्रयोदश कोष्ठ में

इतराणि न भद्राणि तत्त्याज्यानि मनीषिणा ॥
प्रादक्षिण्येन गणयेत्साधकाद्यक्षरात्सुधीः ।
(२५) चतुरस्रं लिखेत्कोष्ठं चतुःकोष्ठसमन्वितम् ।
पुनश्चतुष्कं तत्राऽपि लिखेद्धीमान्क्रमेण तु ॥
ततः षोडशकोष्ठेषु लिखेद्वर्णान्यथाक्रमात् ।
इन्द्वग्निरुद्रनवनेत्रयुगार्कदिक्षु
ऋत्वष्टषोडशचतुर्दशभौतिकेषु ।
पातालपञ्चदशवह्निहिमांशुकोष्ठे

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अः, इस प्रकार षोड़श कोष्ठों में षोड़श स्वर लिखकर उसी नियम से ककारादि हपर्यन्त सब वर्ण उन कोष्ठों में लिखना चाहिये।

अकथह चक्र।

अ क थ ह	उ ङ प	आ ख द	ऊ च फ
ओ ड व	लृ ऋ म	औ ढ श	लॄ ञ य
ई घ न	ॠ ज भ	इ ग ध	ऋ छ ब
अः त स	ऐ ठ ल	अं ण ष	ए ट र

इस प्रकार चक्र निर्माण करके नाम के आदि अक्षर से लेकर मन्त्र के आदि अक्षर पर्यन्त वाम भाग से चारों कोष्ठों में तथा कोष्ठगत कोष्ठों में एक एक यथाक्रम से सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, और अरि, इन चारों भेदों का विचार करना उचित है।

वर्णाल्लिखेल्लिपिभवान्क्रमशस्तु धीमान् ॥
नामाद्यक्षरमारभ्य यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ।
चतुर्भिः कोष्ठैरेकैकमिति कोष्ठचतुष्टयम् ॥
पुनः कोष्ठगकोष्ठेषु सव्यतो नाम्न आदितः ।
सिद्धः साध्यः सुसिद्धोऽरिः क्रमाज्ज्ञेयो विचक्षणैः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सिद्धमन्त्र बांधव, साध्यमन्त्र सेवक, सुसिद्ध मन्त्र पोषक, और शत्रुमन्त्र घातक कहलाते हैं। सिद्धमन्त्र ग्रहण करने से मन्त्र समय पर सिद्ध हुआ करता है। साध्यमन्त्र ग्रहण करने से वह मन्त्र जप होम आदि द्वारा सिद्ध हुआ करता है। सुसिद्धमन्त्र ग्रहण करने से तत्क्षण में हो मन्त्र की सिद्धि होती है। और अरिमन्त्र ग्रहण करने से साधक का सर्वनाश हुआ करताहै। सिद्ध–सिद्ध मन्त्र किञ्चित्काल में ही फलप्रद होता है, सिद्ध–साध्य मन्त्र उस से द्विगुण जप करने पर, और सिद्ध–सुसिद्ध अर्ध जप से फलप्रद होता है। सिद्ध–अरि मन्त्र के जप से बन्धुजनों का नाश होता है। साध्य–सिद्ध द्विगुण जप करने से फलदायी होता है। साध्य–साध्य मन्त्र का जप निष्फल होता है। साध्य–सुसिद्ध मन्त्र

सिद्धार्णा बान्धवाः प्रोक्ता साध्यास्तु सेवकाः स्मृताः।
सुसिद्धाः पोषका ज्ञेयाः शत्रवो घातकाः स्मृताः॥
सिद्धः सिद्ध्यति कालेन साध्यस्तु जपहोमतः।
सुसिद्धो ग्रहणादेव रिपुर्मूलं निकृन्तति॥
सिद्धसिद्धो यथोक्तेन द्वैगुण्यात्सिद्धसाध्यकः।
सिद्धसुसिद्धोऽर्द्धजपात्सिद्धारिर्हन्ति बान्धवान्॥
साध्यसिद्धो द्विगुणकः साध्यसाध्यो निरर्थकः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्विगुण जप करने से फलदायी होता है। साध्य—अरि मन्त्र के जप से गोत्र के जन नष्ट होते हैं। सुसिद्ध—सिद्ध मन्त्र अर्ध जपसे फलदायी होता है। सुसिद्ध—साध्य मन्त्र द्विगुणसे अधिक जप करने से फलदायी होता है। सुसिद्ध—सुसिद्ध मन्त्र ग्रहणमात्र ही से फलदायी होताहै। सुसिद्ध—अरि मन्त्र का जप अपने गोत्रका नाशक होताहै। अरि—सिद्ध मन्त्र के जप से पुत्रनाश होता है। अरि—साध्य मन्त्र का जप कन्या का नाश करता है। अरि—सुसिद्ध का जप पत्नी का नाश करता है। अरि—अरि मन्त्र का जप साधक को नष्ट करता है। इसलिये अरि मन्त्र कदापि ग्रहण करना उचित नहीं है, यदि भ्रम से उसका ग्रहण होजाय तो बटपत्र पर उस मन्त्र को लिखकर किसी नदी के स्रोत में उस पत्रको बहादेना उचित है। इस प्रकार वैरिमन्त्र का त्याग हुआ करता है ऐसी विधि भगवान् महादेवजी ने कही है।

तत्सुसिद्धस्तु द्विगुणात्साध्यारिर्हन्ति गोत्रजान्॥
सुसिद्धसिद्धोऽर्धजपात्तत्साध्यो द्विगुणाधिकात्।
तत्सुसिद्धो ग्रहादेव सुसिद्धारिः स्वगोत्रहा॥
अरिसिद्धः सुतान्हन्यादरिसाध्यस्तु कन्यकाः।
तत्सुसिद्धस्तु पत्नीघ्नस्तदरिर्हन्ति साधकम्॥
वटपत्रे लिखित्वारिमन्त्रं स्रोतसि निक्षिपेत्।
एवं मन्त्रविमुक्तिः स्यादित्याह भगवाँञ्छिवः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अकडम चक्र)

(२६) पूर्व पश्चिम भाग में दो रेखा अङ्कितकरके, उनके बीच उत्तर दक्षिण दिशा में और दो रेखा अङ्कित करना उचित है, तत्पश्चात् ईशानादि चारों कोणों में चार रेखा खींच कर एक राशि चक्र बनाया जाय। इस चक्र के बीच मेष आदि वृषपर्यन्त दक्षिणावर्त्त में अकारादि क्षकारान्त एक एक वर्ण लिखा जाय। केवल ऋ ॠ और लृ लॄ यह चार क्लीव वर्ण छोड़ दिये जायँ।

अकडम चक्र।

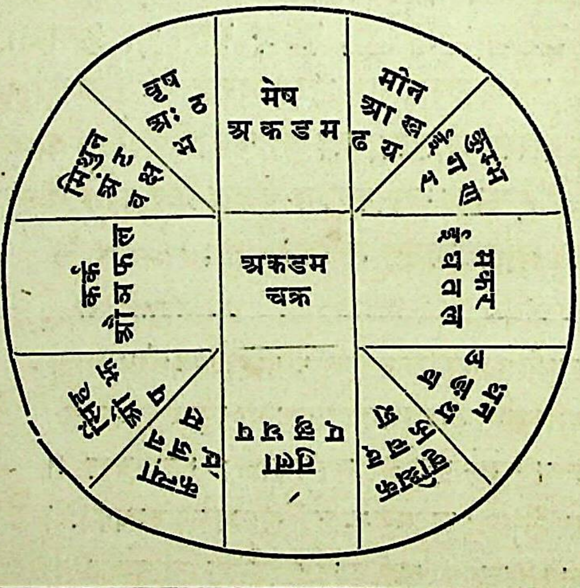

(२६) रेखाद्वयं पूर्वपरेण कुर्यात्
तन्मध्यतो याम्यकुबेरभेदात्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अकडम यह चार वर्ण मेषराशि के घर में आजायँगे। इस प्रकार से मेष से लेकर मीन कोष्ठपर्यन्त मिलाकर मन्त्रोद्धार करने की विधि है। साधक के नाम के आदि अक्षर से लेकर मन्त्रके आदि अक्षर पर्यन्त सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध, और अरि मन्त्र की गणना की जाती है। नवम प्रथम और पञ्चम कोष्ठस्थित सिद्ध, षष्ठ, दशम, और द्वितीय में साध्य, तृतीय सप्तम और एकादश में सुसिद्ध और चतुर्थ अष्टम और द्वादश कोष्ठस्थित मन्त्र अरि समझने योग्य है। श्रीमहादेव आज्ञा करते हैं कि, हे देवि! यही अकडम चक्र कहाता है।

महेशरक्षोऽधिपतिक्रमेण
तिर्यक् तथा वायुहुताशनेन ॥
अकारादिक्षकारान्तान्क्लीवहीनाँल्लिखेत्ततः।
एकैकक्रमतो लेख्यान्मेषादिषु वृषान्तकान् ॥
गणयेत्क्रमशो भद्रे! नामादिवर्णपूर्वकान्।
मेषादितश्च मीनान्तं गणयेत्क्रमशः सुधीः ॥
जप्तुः स्वनामतो मन्त्री यावन्मन्त्रादिमाक्षरम् ॥
सिद्धः साध्यः सुसिद्धारी पुनः सिद्धादयः पुनः।
नवैकपञ्चमे सिद्धः साध्यः षड्दशयुग्मके ॥
सुसिद्धः त्र्यर्षिरुद्रे च वेदाष्टद्वादशे रिपुः।
एतत्ते कथितं देवि! अकडमादिकमुत्तमम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(ऋणधनिचक्र)

(२७) प्रथम एकादश कोष्ठ अङ्कित करके उन को चार कोष्ठ द्वारा पूर्ण करते हुए एक चक्र बनाया जाय। इस चक्र के प्रथम पञ्च कोष्ठों में एक ह्रस्व और एक दीर्घ इस रूप से दो दो, अकारादि दस स्वर वर्ण लिखे जाते हैं, तदनन्तर एकारादि स्वर वर्ण एवं क से ह पर्यन्त व्यञ्जन वर्ण सब एक एक कोष्ठ में क्रम से लिखे जाते हैं। इसके ऊपर की ओर ६,६,६,०,३,४,४,०,०,०, और ३ का साध्याङ्क लिखा जाताहै। एवं नीचे की ओर २,२,५,०,०,२,१,०,४,४, और एक का साधकाङ्क लिखा जाता॥

---

(२७) कोष्ठा एकादशोज्ञेया वेदेन परिपूरिताः।
अकारादिहकारान्ताँल्लिखेत्कोष्ठेषु तत्त्ववित्॥
प्रथमं पञ्चकोष्ठेषु ह्रस्वदीर्घक्रमेण तु।
द्वयं द्वयं लिखेत्तत्र विचारेण तु साधकः॥
शेषेष्वेकैकशो वर्णान्क्रमशस्तु लिखेत्सुधीः॥

अपि च

द्वौद्वौ स्वरौ पञ्चसु कोष्ठकेषु शेषान्स्वरान्षट्सु षडेकमेकम्।
कादीन्हशेषान्विलिखेत्ततोऽर्णानेकैकमेकादशपु त्रिकेषु॥
षट्–काल–काल–वियदग्नि–समुद्रवेद–
खाकाशशून्यदहनाः खलु साध्यवर्णाः।
युग्मद्विपञ्चवियदम्बरयुक्शशाङ्क–
व्योमाब्धिवेदशशिनः खलु साधकार्णाः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ऋणधनिचक्र।

६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

मन्त्र के स्वर और व्यञ्जन वर्ण सब पृथक् पृथक् रक्खे जायँ, इस प्रकार करने से जो जो वर्ण दृष्ट हों वह वह वर्ण इस चक्र के जिन जिन कोष्ठ में हों उन उन कोष्ठों के ऊपरके अङ्क लेकर एकसाथ योग करके युक्त अङ्क समूह को आठ से भाग देकर अवशिष्ट अङ्कों को एक स्थान पर रक्खा जाय। इस प्रकार से मन्त्र-ग्रहीताके नाम का स्वर और व्यञ्जन वर्णसमूह पृथक् पृथक् करके पूर्व कथनानुसार योग एवं भाग कर शेष

नामाऽङ्कलादकठवाद्गजभक्तशेषं
ज्ञात्वोभयोरधिकशेषमृणं धनं स्यात्।
मन्त्रो यद्यधिकाङ्कः स्यात्तदा मन्त्रं जपेत्सुधीः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अङ्कसमूह ग्रहण किया जाय। इसमें विशेषता यह है कि चक्र के निम्नवर्त्ती अङ्कसमूह ग्रहण किये जाते हैं। तदनन्तर पूर्व स्थापित अङ्क और इस अङ्क समूह को लेकर विचार किया जाय। जो अङ्क अधिक हों सो ऋणी और जो अङ्क न्यून हो वह धनी समझने योग्य है। यदि मन्त्र ऋणी अर्थात् मन्त्राङ्क अधिक हो तो वह मन्त्र ग्रहण करने योग्य है। और यदि मन्त्र धनी अर्थात् मन्त्राङ्क न्यून हो तो वह मन्त्र ग्रहण न किया जाय। मन्त्राङ्क और नामाङ्क समान होने पर भी मन्त्र ग्रहण किया जासकता है। परन्तु उभयाङ्क शून्य होने पर उस मन्त्र द्वारा मृत्युकी प्राप्ति होती है इस कारण वह मन्त्र सदा त्याग करने योग्य है। सुप्त मनुष्य जिस नाम द्वारा पुकारने से जाग्रत् होजाया करताहै, दूर से जिस नाम को सुनकर उत्तर देता है, किसी वस्तु में चित्त लगे रहने पर भी जिस नाम पर बोला करता है उसी नाम के अनुसार इस ऋणी धनी चक्र की गणना करने की आज्ञा है। मूलमें जो "अकठ बात्" शब्द है वह चक्रके आदि कोष्ठक के आदि चारों अक्षरों का द्योतक है।

समेऽपि च जपेन्मन्त्रं न जपेत्तु ऋणाधिकम् ॥
शून्ये मृत्युं विजानीयात्तस्माच्छून्यं परित्यजेत् ॥
सुप्तो जागर्त्ति येनासौ दूरस्थः प्रतिभाषते।
वदत्यन्यमनस्कोऽपि तन्नाम ग्राह्यमेव च ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपास्यनिर्णयविधि ।

(२८) यह रूपात्मक सम्पूर्ण जगत् निराकार से उत्पन्न होता है, इस कारण साकार का ध्यान करनेसे मनुष्य तन्मय होजाया करता है। तत्त्व सेही समस्त ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है, तत्त्व से सकल ब्रह्माण्ड का परिवर्त्तन और लय हुआ करता है तत्त्व से ब्रह्माण्ड का निर्णय होता है। सगुण उपासना के उपास्य-भूत देवता शिव, सूर्य, गणेश, विष्णु, और शक्ति, ये पांच यथाक्रम निर्णीत हैं। पञ्च तत्त्व विचार के अनु-सार पांच प्रकार की उपासना सूक्ष्मार्थदर्शीमहर्षियों ने कही है। यह उपासनाभेद वेद और युक्ति-विचार द्वारा सर्व कल्याणकारक सिद्ध होता है। आज कल

---

(२८) निराकारात्समुत्पन्नं साकारं सकलं जगत् ।
तत्साकारं समाश्रित्य ध्याने भवति तन्मयः ॥
तत्त्वाद्ब्रह्माण्डमुत्पन्नं तत्त्वेन परिवर्त्तते ।
तत्त्वेन लीयते सर्वं तत्त्वाद् ब्रह्माण्डनिर्णयः ॥
शिवः सूर्यो गणेशश्च विष्णुः शक्तिर्यथाक्रमम् ।
सगुणोपासनायाश्च देवताः पञ्च कीर्त्तिताः ॥
उपासनानां पञ्चानां पञ्चतत्त्वविवेकतः ।
निर्णयो मुनिभिः पूर्वं कृतः सूक्ष्मार्थदर्शिभिः ॥
वेदप्रमाणतश्चैव तथा युक्तिविचारतः ।
सिद्धः स सर्वथा देवि ! सर्वकल्याणकारकः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

के साम्प्रदायिक आचार्यों में जो परस्पर विरोध देखने में आता है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि अज्ञान से समुत्पन्न यह विरोध दुर्गति का कारण है।

(पञ्चदेवविज्ञान)

(२६) जो पुरुष प्रकृति से अतीत और पच्चीसवां तत्त्व है, यह सम्पूर्ण चराचर जगत् जिसके अधीन है उसको नारायण कहते हैं। जो सम्पूर्ण प्राणी और समस्त पदार्थों को उत्पन्न करता है और जगत् को पवित्र करताहै इस कारण उसे सविता कहते हैं। जो इस ब्रह्माण्ड का मूलस्वरूप है, जिसको देवतागण पूजा किया करते हैं, जो जगत् की ईश्वरी है इस कारण उसे महेश्वरी कहते हैं। जो त्रिगुण का स्वामी है, तत्त्वातीत, अव्यक्त और नितान्त निर्मलहै और जो गणों का प्रभु है अतः वह गणपति कहाजाता है।

विरोधो दृश्यते योऽसौ सम्प्रदायवतामिह।
अज्ञानजोऽयं हेतुर्वै दुर्गतेर्नाऽत्रसंशयः॥
(२६) प्रकृतेः पर एवान्यः स नरः पञ्चविंशकः।
तस्येमानि च भूतानि तेन नारायणः स्मृतः॥
स.वता सर्वभूतानां सर्वान्भावान्प्रसूयते।
सवनात्पावनाच्चैव सविता तेन चोच्यते॥
ब्रह्माण्डमूलभूता या पूजिता देवतागणैः।
ईशनात्सर्वलोकस्य मता सा वै महेश्वरी॥
गुणत्रयेश्वरोऽतीततत्त्वोऽव्यक्तः सुनिर्मलः।
गणानामीश्वरो यस्मात्तस्माद्गणपतिर्मतः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्मादिक देवतागण, मुनि और ब्रह्मवादियों में जो सब से महान् है उस देव को महादेव कहते हैं। इस प्रकार एक ही परमात्मा परब्रह्म के पञ्चदेव रूप पांच भेद पूज्यपाद महर्षियों ने किये हैं।

(अधिकारनिर्णय)

(३०) सृष्टि पाञ्चभौतिक है इस कारण मनुष्य-प्रकृति भी पांच प्रकार की होती है। यद्यपि प्राकृतिक वैचित्र्य के कारण सब मनुष्यों की प्रकृति में कुछ न कुछ भेद रहता है परन्तु आकाश आदि पञ्चतत्त्व के अनुसार प्रत्येक तत्त्व की अधिकता के विचार से मनुष्यके उपासनाधिकार को तन्त्रज्ञ महर्षियों ने पांच भेद में वर्णन किया है। पञ्चोपासना के निर्णय के विचार में पञ्चोपासना का अधिकार निर्णय इसी

ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।
तेषां महत्त्वाद्देवोऽयं महादेवः प्रकीर्त्तितः॥
देवपञ्चकमित्याहुरेकं देवं सुधीवराः।
एकमेव परंब्रह्म परमात्मपराभिधम्॥

(३०) मानवानां प्रकृतयः पञ्चधा परिकीर्त्तिताः।
यतो निरूप्यते सर्गः पञ्चभूतात्मको बुधैः॥
भिन्ना यद्यपि भूतानां प्रकृतिः प्रकृतेर्वशात्।
तथापि पञ्चतत्त्वानामनुसारेण तन्त्रवित्॥
प्रत्येकतत्त्वप्राचुर्यं विमृश्य विधिपूर्वकम्।
उपासनाधिकारस्य पञ्चभेदमवर्णयत्॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रकार से हुआ करता है। आकाश का अधिपति विष्णु, अग्नि की अधिपति महेश्वरी, वायु का सूर्य, पृथिवी का शिव, और जल का गणेश हैं। योग में निष्णात गुरुदेव शिष्य की पञ्चधा-प्रकृति-निर्णय-पूर्वक उसके उपासनाधिकार का निर्णय कर देवें। ऋतम्भरा बुद्धि, स्वरोदय, ज्यौतिष, इन तीनों की सहायता से उपासनाधिकारनिर्णय किया जासकता है। पञ्चोपासना के अनुसार उपासनाधिकारनिर्णय होने के अनन्तर शिष्य के आन्तरिक भावों की परीक्षाद्वारा और उसके चित्तसंवेग, वैराग्य, धारणा, आदि के निर्णय द्वारा प्रकृति के अनुसार उसके सम्प्रदाय व रूप विशेष के निर्णय करने से शिष्य का कल्याण हुआ करता है।

उपासनाः पञ्चविधा इत्थं निर्णीयते स्फुटम् ॥
आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चाऽपि महेश्वरी ।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः ॥
गुरवो योगनिष्णाताः प्रकृतिं पञ्चधा गताम् ।
परीक्ष्य कुर्युः शिष्याणामधिकारविनिर्णयम् ॥
ऋतम्भरधिया ज्योतिः स्वरोदयसहायतः ।
उपासनाधिकारो वै निर्णेतुं शक्यते ध्रुवम् ॥
चित्तसंवेगवैराग्यधारणादिविनिर्णयम् ।
परीक्ष्य चाऽस्यान्तरिकान्भावाञ्छिष्यस्य योगवित् ॥
तत्सम्प्रदायनियमं तेषां प्रकृतिसन्निभम् ।
करोति जीवकल्याणकल्पनाकलितान्तरः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्रयोगाङ्गवर्णन ।

(३१) मन्त्रयोग सोलह अङ्गों से सुशोभित है, जैसे चन्द्रमा सोलह कलाओं से सुशोभित है । भक्ति, शुद्धि, आसन, पञ्चाङ्गसेवन, आचार, धारणा, दिव्य-देशसेवन, प्राणक्रिया, मुद्रा, तर्पण, हवन, बलि, याग, जप, ध्यान, और समाधि, मन्त्रयोग के ये षोड़श अङ्ग हैं। भक्ति के तीन भेद हैं, और अधिकार के भेद से और उपासना के तारतम्य से त्रिगुण के अनुसार उसके अधिकार भी तीन हैं ।

शुद्धि के चार भेद हैं। आसन के दो भेद हैं। गीता स्तोत्र आदि पांचों के सेवन से पञ्चाङ्ग कहाता है । आचार के तीन भेद होने पर भी साधक के अधि-

---

(३१) भवन्ति मन्त्रयोगस्य षोडशाङ्गानि निश्चितम् ।
यथा सुधांशोर्जायन्ते कलाः षोडश शोभनाः ॥
भक्तिः शुद्धिश्चासनं च पञ्चाङ्गस्याऽपि सेवनम् ।
आचारधारणे दिव्यदेशसेवनमित्यपि ॥
प्राणक्रिया तथा मुद्रा तर्पणं हवनं बलिः ।
यागो जपस्तथा ध्यानं समाधिश्चेति षोडश ॥
भक्तेर्भेदास्त्रयो ज्ञेयाश्चाधिकारस्य भेदतः ।
त्रैगुण्यभेदात्रिविधोऽधिकारोऽस्याः प्रकीर्त्तितः ॥
शुद्धिश्चतुर्विधा प्रोक्ता चाऽऽसनं द्विविधं स्मृतम् ।
पञ्चाङ्गसेवनं गीतास्तोत्रपाठादिकं मतम् ॥
आचारस्त्रिविधः प्रोक्तोऽधिकारास्तस्य सप्त वै ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कार सात माने गये हैं। बाह्य और आन्तर भेद से धारणा के दो भेद हैं । दिव्यदेश सेवन के सोलह भेद हैं। उन्हीं में स्वभावतः इष्टदेवों का आविर्भाव हुआ करता है। प्राणक्रिया एकही है, परन्तु न्यासादिक उसी के अङ्गभूत हैं। मुद्रा अनेकभावप्रद होने के कारण बहुत हैं। तर्पण, हवन, और बलि, देवता के प्रीतिमूलक हैं। बाह्य और आन्तर भेद से यज्ञ के दो भेद हैं। उपचार भेद से पूजा की कल्पना और श्रद्धा के भेद से पूजा के भेद निर्णीत होते हैं। जप त्रिविध है। पञ्चोपासना के भेद से ध्यान अनेक होने पर भी समाधि एकही होती है । मन्त्रयोग समाधि को महाभाव कहते हैं।

धारणा द्विविधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥
षोडशाङ्गं विनिर्दिष्टं दिव्यदेशस्य सेवनम् ।
आविर्भवन्तीष्टदेवा अत्रैवाशु स्वभावतः ॥
यदङ्गभूता न्यासाद्याः सैका प्राणक्रिया मता ।
भावबाहुल्यवत्त्वाद्धि बह्वयो मुद्राः प्रकीर्त्तिताः ॥
देवानां प्रीतिकृज्ज्ञेयं तर्पणं हवनं बलिः ।
बाह्याभ्यन्तर भेदेनयज्ञभेदो द्विधा मतः ॥
श्रद्धोपचारभेदेन पूजाया भेदकल्पना ।
जपस्य हि त्रयो भेदा ध्यानं बहुविधं मतम् ॥
परं समाधिरेकः स्यान्महाभावेतिनामकः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भक्तिवर्णन।

(३२) भक्ति के तीन भेद हैं, यथा—वैधी भक्ति, रागात्मिका भक्ति, और पराभक्ति। अपने इष्टदेव में ऐकान्तिक अनुराग को धीर पुरुष भक्ति कहते हैं। विधि निषेध द्वारा निर्णीत और साध्यमाना भक्ति को वैधी कहते हैं। भक्तिरस का आस्वादन कराकर साधक को भाव विशेष में निमग्न करानेवाली भक्ति रागात्मिका कही जाती है। और परमानन्दप्रदा भक्ति पराभक्ति कहाती है, जो योग में कुशल योगिगण को समाधि दशा में प्राप्त होती है। भक्त त्रिगुण भेद से त्रिविध होते हैं। यथा—आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी, और चतुर्थ ज्ञानी, जो त्रिगुणातीत है।

---

(३२) भक्तिस्तु त्रिविधा ज्ञेया वैधी रागात्मिका परा।
देवे परोऽनुरागस्तु भक्तिः सम्प्रोच्यते बुधैः॥
विधिना या विनिर्णीता निषेधेन तथा पुनः।
साध्यमाना च या धीरैः सा वैधी भक्तिरुच्यते॥
ययाऽऽस्वाद्य रसान्भक्तेर्भावे मज्जति साधकः।
रागात्मिका सा कथिता भक्तियोगविशारदैः॥
पराऽऽनन्दप्रदा भक्तिः पराभक्तिर्मता बुधैः।
या प्राप्यते समाधिस्थैर्योगिभिर्योगपारगैः॥
त्रैगुण्यभेदात्त्रिविधा भक्ता वै परिकीर्त्तिताः।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी तथा त्रिगुणतः परः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ज्ञानी भक्तही परा भक्ति का अधिकारी होसक्ता है। त्रिगुण भेद से उपासक तीन प्रकार के होते हैं। ब्रह्मोपासक सब में श्रेष्ठ है, ऐसा विद्वद्गणों ने कहा है। ब्रह्मबुद्धि से सगुणोपासक और ब्रह्मबुद्धि से अवतारोपासक इसी श्रेणि में हैं। सकाम बुद्धि से ऋषि देवता और पितरों की उपासना करनेवाले द्वितीय श्रेणि के हैं। और क्षुद्र शक्तियों की उपासना करनेवाले तृतीय श्रेणि के हैं। उपदेवता प्रेतादिक की उपासना इसी निम्न श्रेणि की समझी जाती है। प्रथम श्रेणि की उपासना अर्थात् ब्रह्मोपासनाही परम कल्याणप्रद और निःश्रेयसकर होने के कारण सर्व श्रेष्ठ जानने योग्य है।

पराभक्त्यधिकारी यो ज्ञानिभक्तः स तुर्यकः ॥
उपासकाः स्युस्त्रिविधास्त्रिगुणस्याऽनुसारतः।
ब्रह्मोपासक एवाऽत्र श्रेष्ठः प्रोक्तो मनीषिभिः ॥
सगुणोपासना या स्यादवतारप्रपूजनम्।
विहिता ब्रह्मबुद्ध्या चेदत्रैवान्तर्भवन्ति ताः ॥
सकामबुद्ध्या विहितं देवर्षिपितृपूजनम्।
द्वितीयश्रेणिका ज्ञेयास्तत्कर्त्तारस्तथा पुनः ॥
तृतीयश्रेणिकास्ते स्युः क्षुद्रशक्तिसमर्चकाः।
प्रेताद्युपासनं चैव निम्नश्रेणिकमुच्यते ॥
ब्रह्मोपासनमेवाऽत्र मुख्यं परममङ्गलम्।
निःश्रेयसकरं ज्ञेयं सर्वश्रेष्ठं शुभावहम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुद्धिवर्णन।

(३३) शुद्धि के शरीर, मन, दिक्, और स्थान के भेद से चार भेदहैं। वेही स्थानशुद्धि, दिक्शुद्धि, बाह्यशुद्धि, और आभ्यन्तर शुद्धि कहे जाते हैं। स्थानशुद्धि से पवित्रतावृद्धि, और पुण्यवृद्धि होती है। दिक्शुद्धि से शक्ति की प्राप्ति होती है। बाह्यशुद्धि से आत्मप्रसाद और इष्टदेव की कृपा उपलब्ध होती है। और अन्तःशुद्धि द्वारा इष्टदेव का दर्शन और समाधि की प्राप्ति होती है। योगी को इन चारों शुद्धियों का विचार अवश्य करना उचित है।

(दिक्शुद्धि)

(३४) पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर नित्य

---

(३३) कायचित्तदिशास्थानभेदाच्छुद्धिश्चतुर्विधा।

यद्वा

स्थानशुद्धिश्च दिक्शुद्धिर्बाह्यशुद्धिस्तथैव च।
अन्तःशुद्धिरिति प्रोक्तास्ताश्चतस्रो यथाक्रमम्॥
स्थानशुद्ध्या पुण्यवृद्धिः पावित्र्यं च प्रजायते।
दिक्शुद्ध्या शक्त्यधिगमो बाह्यशुद्ध्यात्महृष्टता॥
इष्टदेवकृपाप्राप्तिश्चान्तःशुद्ध्येष्टदर्शनम्।
समाधिसिद्धिर्भवति योगी शुद्धीः समाचरेत्॥

(३४) आसीनः प्राङ्मुखो नित्यं जपं कुर्याद्यथाविधि।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथाविधि जप करे, और रात्रि को उत्तरमुख बैठकर दैवकार्य सदा करे। दिक्शुद्धि द्वारा साधक को साधन में सिद्धि की प्राप्ति होती है, और साधक का मन वशीभूत होता है। इस कारण सावधान योगी को सदा दिक्शुद्धि का विचार रखना उचित है।

(स्थानशुद्धि)

(३५) जिस प्रकार गङ्गाजल से शरीर की शुद्धि हुआ करती है, इसी प्रकार गोमय से स्थान की शुद्धि करने योग्य है। और पञ्चशाखायुक्त स्थान अर्थात् अश्वत्थ, बट, बिल्व, आमलकी, और अशोक, यह पञ्चवृक्षयुक्त पञ्चवटी के नीचे का स्थान सिद्धियों का देनेवाला है। गोशाला, गुरुगृह, देवायतन, अर्थात् देवमन्दिर, वनस्थान, तीर्थादि पुण्यक्षेत्र, और नदी-तीर, यह स्थानसमूह सदा पवित्र समझे जाते हैं।

रात्रावुदङ्मुखः कुर्याद्दैवंकार्यं सदैव हि ॥ *
दिक्शुद्ध्या साधकः सिद्धिं साधने लभतेऽञ्जसा ।
मनश्च वश्यतां यातीत्यतः कार्या प्रयत्नतः ॥

(३५) गोमयेन यथा स्थानं कायो गङ्गोदकेन च ।
पञ्चशाखायुतो देशस्तथा सिद्धिप्रदायकः ॥
गोशाला वै गुरोर्गेहं देवायतनकाननम् ।
पुण्यक्षेत्रं नदीतीरं सदा पूतं प्रकीर्त्तितम् ॥

---

* प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथवाऽपि ... ...
बद्धासनो गणपतिं च गुरुञ्च नत्वा । ... ...
इति नागभट्टः ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(काय-शुद्धि)

(३६) साधन क्रिया के अर्थ मनुष्यों को स्नान कर्म सब से प्रथम कार्य है, और ऐसेही वेद और धर्मशास्त्रों ने आज्ञा दी है । इस स्नानक्रिया में और भी विशेषता यह है कि, इसके द्वारा सौन्दर्य और पुष्टि की वृद्धि होती है, और शरीर को आरोग्य की प्राप्ति होती है। स्नान सात प्रकार का होता है यथा— मान्त्रस्नान, भौमस्नान, आग्नेयस्नान, वायव्य-स्नान, दिव्यस्नान, वारुणस्नान, और मानसस्नान। "आपोहिष्ठा" इत्यादि मन्त्र और जल आदि से जो स्नान किया जाता है, उसको मान्त्र स्नान कहते हैं। शरीर को वस्त्र से भली प्रकार पोंछने को भौम स्नान कहते हैं । भस्म धारण करने से आग्नेयस्नान कहा जाता है । गोरज को शरीर पर लेपन अथवा शरीर में उसका स्पर्श वायव्य कहाता है । वृष्टिपात होते समय यदि सूर्य का आतप हो तो उस समय

(३६) स्नानमूलाः क्रियाः सर्वाः श्रुतिस्मृत्युदिता नृणाम् ।
तस्मात्स्नानं निषेवेत श्रीपुष्ट्यारोग्यवर्द्धनम् ॥
मान्त्रं भौमं तथाग्नेयं वायव्यं दिव्यमेव च ।
वारुणं मानसं चैव सप्तस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥
आपोहिष्ठादिभिर्मान्त्रं भौमं देहप्रमार्जनम् ।
आग्नेयं भस्मना स्नानं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥
यत्तदातपवर्षेण स्नानं दिव्यमिहोच्यते ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वृष्टिजल में स्नान करने से दिव्यस्नान कहाता है। जल आदि में डूबकर स्नान करने से वारुण स्नान कहाता है। और श्रीभगवान् के चिन्तन से मानसस्नान हुआ करता है। अनन्त सूर्यों की समान प्रभायुक्त, वामदेव, चतुर्भुज, शंख चक्र गदा पद्म मुकुटधारी, शेषशायी, सत्त्वगुणमय ऐसे श्रीभगवान् के रूपका ध्यानही मानसस्नान है। अपनी अपनी शाखा में कहे हुए स्नान शास्त्रविधि के अनुसार करना उचित है, जिसके द्वारा शरीर का मल दूर होजाय। दूर्वा, तिल, और जल से संयुक्त ताम्रपात्र लेकर अपने इष्टदेव की प्रीति के लिये स्नान करना चाहिये। प्रथम गुरुपंक्ति का तर्पण करके इष्ट देवता का तर्पण करे, इस प्रकार यथाविधि नित्यही साधक को मान्त्रस्नान करना उचित है।

वारुणं चावगाहःस्यान्मानसं विष्णुचिन्तनम् ॥
अनन्तादित्यसङ्काशं वामदेवं चतुर्भुजम्।
शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म-मुकुटं शेषशायिनम् ॥
प्रभूतसत्त्वसम्पन्नं ध्यायेन्नारायणं विभुम्।
अथ स्नानं प्रकुर्वीत यथा शास्त्रविधिः स्मृतः ॥
मलप्रक्षालनं स्नानं स्वशाखोक्तं समाचरेत् ॥
ताम्रपात्रं सदूर्वं च सतिलं सजलं तथा।
गृहीत्वा स्वेष्टदेवस्य प्रीतये स्नानमाचरेत् ॥
गुरुपङ्क्तिं तु सन्तर्प्य तर्पयेदिष्टदेवताम्।
मान्त्रं स्नानं साधको वै नित्यं कुर्याद्यथाविधि ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(अन्तःशुद्धि)

(३७) भयशून्यता, चित्तप्रसन्नता, ज्ञानयोग अर्थात् आत्मज्ञान लाभ करने के उपायों में तीव्र निष्ठा, दान, इन्द्रियसंयम, यज्ञ, वेद और वेदसम्मत शास्त्रों का पाठ करना, तप, सरलता वृत्ति, अहिंसा अर्थात् जीवों की रक्षा करने में प्रवृत्ति, सत्य, अक्रोध, कर्म के फल में अनासक्ति, चित्तकी शान्ति, खलवृत्तियोंका परित्याग, सब भूतोंपर दया, लोभका त्याग करना, अहङ्कार का त्याग करना, कुकर्म करनेमें लज्जा आना, चञ्चलताका त्याग, तेज, क्षमा, अर्थात् दोषीको दण्ड देनेमें समर्थ होने परभी उसके दोषोंकी उपेक्षा करना, धैर्य, शौच, सब से निर्विरोध रहना, और नाऽतिमानिता अर्थात् 'मैं पूज्यहूँ' 'मैं ऐसा योग्यहूँ' इत्यादि अभिमानसम्बन्धी भावोंका त्याग करना, यह सब दैवी सम्पत्ति कहाती है, और इन सब वृत्तियोंके अभ्यास द्वारा अन्तःकरण निर्मल हुआ करता है।

---

(३७) अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नाऽतिमानिता।
भवन्ति सम्पदो दैव्यश्चित्तनैर्मल्यकारणम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दम्भ अर्थात् 'मैं धार्मिक हूँ' इस प्रकार का अभिमान, दर्प अर्थात् मैं, धनीहूँ' इस प्रकार का अहङ्कार भाव, अभिमान अर्थात् 'मैं पूजनीय हूँ' इस प्रकार का अहन्त्वभाव, क्रोध, पारुष्य अर्थात् निष्ठुरता, अविवेक अर्थात् विचारपूर्वक काम न करना, इत्यादि आसुरी सम्पत् जानने योग्य है। पूर्व कथित दैवी सम्पत् मोक्ष का कारण है। और आसुरी सम्पत् जीव के बन्धन का हेतु है। इस कारण बुद्धिमानों को उचित है कि वे सदा दैवी सम्पदों का अभ्यास करके मोक्षपथ में अग्रसर हुआ करें।

आसन-वर्णन।

(३८)मन्त्रयोगमें हितप्रद होनेके कारण प्रधानतः दो आसन लियेगये हैं, यथा स्वस्तिक, और पद्मासन। आसन भेद, आसनशुद्धि, और आसन क्रिया, इन तीनों के द्वारा आसनशुद्धि होती है। आसन पदार्थ

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाऽभिजातस्य विद्यात्सम्पदमासुरीम्॥
दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता।
दैवीं सम्पत्तिमासाद्य निस्त्रैगुण्यो भवेत्सुधीः॥

(३८) प्रधानतो मन्त्रयोग आसने द्वे हितप्रदे।
पद्मं च स्वस्तिकं चैव तथा तच्छुद्धिरुच्यते॥
भेद-शुद्धि-क्रियाभ्यासादासनं शुद्ध्यति ध्रुवम्।
यत्रास्यते साधकेन भेदास्तस्य पृथक् पृथक्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कि जिसपर साधक बैठे, उस के अनेक भेद वेद और तन्त्रों में मुनिवर्यों से प्रकाशित हैं। सकाम निष्काम विचार, उपासनापद्धति, और कामनाके तारतम्य से आसनभेद निर्णीत हुए हैं। धारणाशुद्धि और मन्त्रोच्चारणद्वारा आसनशुद्धि कीजाती है, आसन कर्मकांड, और उपासनाकाण्ड के विभिन्नभेद द्वारा विभिन्न प्रकार से उक्त दोनों काण्डों में निर्णीत हुए हैं। और आसनक्रिया का विज्ञान हठयोगतत्त्वज्ञ परात्मद्रष्टा प्राचीन योगियों ने विधिपूर्वक निर्णीत किया है। आसन की सिद्धि योगियों के लिये परम कल्याणप्रद है।

(आसनभेद)

(३९) पट्टवस्त्र, कम्बल, कुशनिर्मित, सिंहचर्म,

वेदेषु तन्त्रेषु तथा कथिता मुनिपुङ्गवैः ॥
सकामाकामभेदेनोपासनायाश्च भेदतः।
कामनातारतम्याच्च निर्णीतान्यासनानि वै ॥
धारणाशुद्धितो मन्त्रोच्चारणादपि शुद्ध्यति।
आसनं तच्च द्विविधं कर्मोपासनभेदतः ॥
बहुशो वर्णितं कर्मोपासनाकाण्डयोः स्फुटम्।
निर्णीतमासनविधेर्विज्ञानं विधिपूर्वकम् ॥
परात्मदर्शिभिः पूर्वैर्हठयोगविशारदैः।
योगिनां श्रेयसे सिद्धिरासनस्य प्रकीर्त्तिता ॥
(३९) सुचैलं काम्बलं कौशं सिंहव्याघ्रमृगाजिनम्।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याघ्रचर्म, और मृगचर्म के आसन अतिशुद्ध कहाते हैं, और ये सबही सिद्धि फल के देनेवाले हैं। काम्य कर्म के अर्थ कम्बलासन श्रेष्ठ है, परन्तु रक्त कम्बल निर्मित आसनही सबसे उत्तम समझा जाता है। कृष्णाजिन, अर्थात् काले मृग के चर्म के आसन से ज्ञान की सिद्धि, व्याघ्रचर्म से मोक्ष की सिद्धि, कुशासन से आयु की प्राप्ति, और चैल अर्थात् रेशम के आसन से व्याधि का नाश हुआ करता है, और प्रथम चैल, उसके नीचे अजिन, और सबसे नीचे कुशासन, इस प्रकार यथाक्रम से आसन निर्माण करने से योग साधन में सिद्धि की प्राप्ति होती है।

अब दुःखदायी अर्थात् निषिद्ध आसनों का वर्णन किया जाता है। पृथिवी को आसन बनाने से दुःख की प्राप्ति, काष्ठासन से दुर्भाग्य का उदय, वंशनिर्मित आसन से दरिद्रता की प्राप्ति, पाषाणनिर्मित आसन

एतेषामासनं शुद्धं सिद्धये वै फलाय च ॥
काम्यार्थं कम्बलं चैव श्रेष्ठं च रक्तकम्बलम् ।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षः स्याद्व्याघ्रचर्मणि ॥
कुशासने भवेदायुश्चैलं व्याधिविनाशनम् ।
योगसिद्धिप्रदाने तु चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥
धरण्यां दुःखसम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुजासने ।
वंशासने दरिद्रः स्यात्पाषाणे व्याधिपीडनम् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

से व्याधि की उत्पत्ति, तृण के आसन से यश की हानि, पल्लव के आसन से चित्तविभ्रम की प्राप्ति, और वस्त्रनिर्मित आसन से जप, ध्यान और तप की हानि हुआ करती है इस कारण ये सब आसन निषिद्ध हैं। सिंहचर्म, व्याघ्रचर्म, और कृष्णसारचर्म पर गुरुदीक्षा विहीन गृही को कदापि बैठना उचित नहीं है। ऐसे आसनों पर गृहस्थगण केवल गुरु आज्ञा पानेसेही बैठ सकते हैं। परन्तु स्नातक ब्रह्मचारिगण को इन आसनों पर उदासीन के समान बैठना चाहिये। उचित आसन पर बैठकर पृथ्वी इस मन्त्र के ऋषि का नाम उच्चारणपूर्वक, यथा—मेरुपृष्ठ आदि क्रम से छन्द आदि का उच्चारणकर आसने विनियोगः द्वारा आसन की शुद्धि करके सुखपूर्वक बैठकर जप पूजा आदि करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है, और अन्यथा करने से साधन कार्य निष्फल हुआ करता है।

तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
जपध्यानतपोहानिर्वसनासनतो भवेत् ॥
नादीक्षितो विशेज्जातु सिंहव्याघ्राजिने गृही ।
उदासीनवदास्येत स्नातकब्रह्मचारिभिः ॥
पृथिवीमन्त्रस्य च ऋषिर्मेरुपृष्ठ उदाहृतः ।
सुतलं च तथाच्छन्दः कूर्मो देवोऽस्य कीर्त्तितः ॥
आसने विनियोगः स्यादासने सुखदे विशेत् ।
जपार्चनादिकं कुर्यादन्यथा निष्फलं भवेत् ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पञ्चाङ्गसेवनवर्णन।

(४०) गीता, सहस्रनाम, स्तव, कवच, और हृदय, इन्हें विद्वानों ने पञ्चाङ्ग कहा है। स्वस्व उपासना सम्प्रदाय के अनुसार गीता, और स्वस्व पद्धति के अनुसार सहस्रनाम, स्तव, कवच, और हृदय के प्रतिदिन पाठ करने से योगी कल्मषरहित होता हुआ योगसिद्धि को प्राप्त करता है। पञ्चोपासना के अनुसार गीता पांच हैं—यथा—भगवद्गीता, गणेशगीता, भगवतीगीता, सूर्यगीता, और शिवगीता,। इसी प्रकार सहस्रनाम भी पृथक्२ पांचहैं। और अनेक पद्धति के अनुसार स्वस्व उपासना मूलक स्तव, कवच, और हृदय, अनेक हैं, सो साधक को श्रीगुरुदेवोपदेश द्वारा

---

(४०) गीतासहस्रनामानि स्तवः कवचमेव च।
हृदयं चेति पञ्चैते पञ्चाङ्गं प्रोच्यते बुधैः॥
स्वोपासनानुसारेण गीतायाः पठनाद्ध्रुवम्।
सहस्रनामाध्ययनात्स्वपद्धत्यनुसारतः॥
स्तोत्रस्य कवचस्याऽपि हृदयस्य च पाठतः।
योगसिद्धिमवाप्नोति योगी विगतकल्मषः॥
गीता पञ्चविधा प्रोक्ता पञ्चोपासनभेदतः।
भगवत्सूर्यशक्तीनां गणेशस्य शिवस्य च॥
तथा सहस्रनामाद्या त्रिविधाः परिकीर्त्तिताः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्राप्त करने योग्य हैं। सब गीताओं में जगज्जन्मादि कारण विचार से एक अद्वितीय ब्रह्म के विचित्र भावमय विज्ञान का वर्णन किया है, क्योंकि पञ्चोपासना ब्रह्मोपासनाही है।

आचार-वर्णन।

(४१) साधकों के अर्थ त्रिविध आचारवर्णन आचार्यों ने किया है। यथाः–दिव्य, दक्षिण, और वाम। और साधक के अधिकार सात कहे गये हैं यथा–दीक्षा, महादीक्षा, पुरश्चरण, महापुरश्चरण, अभिषेक, महाभिषेक, और तद्भाव। इन अधिकारों के द्वारा साधक मुक्तिपद को उपलब्ध करसकता है इसमें

अनेकोपासनाभेदाद्विज्ञेया गुरुदेवतः॥
गीतासु वर्णितं ह्येकं जगज्जन्मादिकारणम्।
विचित्रभावशबलं विज्ञानं ब्रह्मणः स्फुटम्॥
ब्रह्मोपासनतां यान्ति यतः पञ्चाऽप्युपासनाः॥

(४१) आचारस्त्रिविधः प्रोक्तः साधकानां मनीषिभिः।
दिव्यदक्षिणवामाश्चाधिकाराः सप्त कीर्त्तिताः॥
सप्ताधिकारा विदुषः साधकस्य मता इमे।
दीक्षा ततो महादीक्षा पुरश्चरणमेव च॥
ततो महापुरश्चर्याऽभिषेकस्तदनन्तरम्।
षष्ठो महाभिषेकश्च तद्भावोऽन्तिम ईरितः॥
साधकोऽनेन लभते मोक्षं नाऽस्तीह संशयः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सन्देह नहीं। साधक के इन सात अधिकारों के नाम तन्त्रादिशास्त्रों में दिव्य, दाक्षिण, और वाम आचारों के अनुसार बहुप्रकार के हैं जो स्वस्व सम्प्रदाय में व्यवहृत होतेहैं। दक्षिण और वाम आचार एक दूसरे से विरुद्ध हैं। दोनों का लक्ष्य निवृत्तिमूलक होने पर भी एक प्रवृत्तिपर और दूसरा निवृत्तिपर है। मनुष्यों में प्रवृत्ति स्वाभाविकी है, किन्तु निवृत्ति महाफल देनेवाली है. इस कारण उपासना में भी दोनों आचारों का वर्णन देखने में आता है। आचार उपासना के अन्तर्भावों का परिचायक और त्रिविध शुद्धि-परिचायकहै ऐसा विद्वज्जनोंने कहाहै। स्वस्व आचार के भेद श्रीगुरुमुख से जान लेने योग्यहैं। जिस आचार में निवृत्तिमार्ग के पूर्णाधिकारी गण स्वभावतः रत

एषां सप्ताधिकाराणां नामानि विविधानि वै।
तन्त्रादिशास्त्रे कथितान्याचारस्याऽनुसारतः॥
परस्परं विप्रतीपावाचारौ वामदक्षिणौ।
द्वयोरभिन्नलक्ष्यत्वेऽप्येकः प्रवृत्तिनिष्ठितः॥
निवृत्तिनिष्ठो ह्यपरः प्रवृत्तिर्हि निसर्गजा।
महाफला निवृत्तिस्तु विज्ञेया वेदवादिभिः॥
अतो ह्युपासनायां वै आचारो द्विविधो मतः।
उपासनान्तर्भावा वै त्रिविधाश्चाऽपि शुद्धयः॥
आचारैः परिचीयन्ते प्रोक्तमेतन्मनीषिभिः॥
स्वाचारभेदा विज्ञेया गुरुदेवोपदेशतः।
निवृत्तिमार्गपथिका रता यत्र निसर्गतः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होते हैं। दिव्याचार वह है जो पूर्वोक्त दोनों आचारों से तृतीय है। वाम और दक्षिण दोनों आचार परस्पर विरुद्ध हैं, परन्तु दिव्याचार दोनों से अविरुद्ध और सर्वजीवहितकर है। वाम आचार प्रवृत्ति पर, और दक्षिण निवृत्तिपर है। और दिव्याचार प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों से अतीत है, और यह द्वन्द्वातीत होने से परमानन्दप्रद मानागया है।

(लता-साधन)

(४२) उपासना की विधि में जो बाह्य क्रियाओं का भाव रक्खा गया है उसको तन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तक आचार्योंने आचार कहाहै। यह आचार विष्णूपासना, सूर्योपासना, गणेशोपासना, और शिवोपासना, इन चारों में सदा एकही तरह हुआ करताहै, परन्तु शक्ति

दिव्याचारः स भवति यस्तृतीयतया मतः।
द्वौ वामदक्षिणाचारौ विरुद्धौ हि परस्परम्॥
दिव्याचारो नो विरुद्धः सर्वजीवहितप्रदः।
वामः प्रवृत्तिपरको दक्षिणस्तु निवृत्तिगः॥
दिव्याचार उभाभ्यां वै परः श्रेयस्करो मतः॥

(४२) उपासना-विधौ यस्तु भावो बाह्यक्रियाश्रयः।
आचारः कथ्यते सोऽसौ तन्त्रशास्त्रप्रवर्त्तकैः॥
विष्णु-सूर्य-गणेशानां शिवस्योपासनासु च।
चंतसृष्वयमाचारो भवत्येकविधः सदा॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

की उपासना में समस्त तन्त्रशास्त्र के अनुसार वह आचार वामाचार और दक्षिणाचार इन दो भेदों से दो प्रकार का होता है। इस शक्ति उपासना में शक्ति की प्रधानता होने से तत्त्वदर्शिगणों ने साधनों का बहु विस्तार किया है एवं अधिकार भी दो रक्खे हैं। तन्त्रों में शक्ति उपासना विधि का बहुत विस्तार है। तन्त्रशास्त्रज्ञ ऋषिगणों ने दक्षिणाचार से जो विपरीत हो उसे वामाचार कहा है। साधक के सात्त्विक होने पर दिव्याचार कल्याणकारक होता है, और राजसिक साधक के लिये पश्याचार हितकारक है, एवं तामसिक साधक वामाचार का अधिकारी है। वामाचार ही को वीराचार भी कहते हैं। यह कलियुग में लोक-

---

द्विविधस्तु भवत्येष वाम-दक्षिणभेदतः।
आचारः शक्तिपूजायां सर्वतन्त्रानुसारतः॥
शक्तिप्राधान्यतश्चाऽस्मिञ्छक्तिपूजाविधौ नृणाम्।
साधनानां सुविस्तारः क्रियते तत्त्वदर्शिभिः॥
अधिकारोऽत्र पूजायां द्विविधो दृश्यते तथा।
तन्त्रेषु बहुविस्तारः शक्तिपूजाविधेरभूत्॥
दक्षिणाचारतो योऽयं विपरीतो भवेदिह।
वामाचारः स विज्ञेयस्तन्त्रशास्त्रविशारदैः॥
जने सत्त्वप्रधाने तु दिव्याचारः प्रशस्यते।
पश्याचारो रजोमुख्ये वामाचारश्च तामसे॥
वामाचारस्तु योऽयं वै वीराचारः स कथ्यते।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्याणार्थ निर्णीत हुआ है । कलियुग में अपनी अपनी प्रकृति के वश जीवगण इस आचार के द्वारा अक्षय कल्याण साधन कर सकेंगे । इस प्रकार से प्रवृत्ति की क्रियाओं में निवृत्ति के लक्ष्य रहने के कारण घोर प्रवृत्ति की चेष्टाओं में भी साधक आत्मोन्नति करता हुआ सिद्धि प्राप्त कर सकता है। मुनिओं से आदृत यही वामाचार का रहस्य है। प्रायः तन्त्रों में शक्ति उपासना में ही वामाचार-क्रिया-प्रधान लता-साधन का वर्णन है। परन्तु वैष्णव आदि चार सम्प्रदायों में जहां युगल-उपासना की विधि है, ऐसे सम्प्रदायों में भी इस क्रिया का वर्णन किसी किसी तन्त्र में मिलता है। दक्षिणाचार में जिस प्रकार दो

लोककल्याणसिद्ध्यर्थं निर्णीतोऽसौ कलौ युगे ॥
स्वां स्वां प्रकृतिमाश्रित्य जीवाः परवशाः कलौ ।
वामाचारमनुष्ठाय लप्स्यन्ते शुभमव्ययम् ॥
एवं प्रवृत्तिकार्येषु निवृत्तेर्लक्ष्यतावशात् ।
नूनं प्रवृत्तिचेष्टासु घोरास्वपि च साधकः ॥
प्रभवेत्साधितुं सिद्धिमात्मनश्चोन्नतिं सदा ।
वामाचाररहस्यं वै ह्येतन्मुनिसमादृतम् ॥
वामाचारक्रियामुख्यं लतासाधनवर्णनम् ।
विहितं तन्त्रमर्मज्ञैः प्रायशः शक्त्युपासने ॥
अन्येषु सम्प्रदायेषु युग्मोपासनवर्णना ।
विहिता यत्र, तत्रैव क्रियेयमुपवर्णिता ॥
यथा द्वैविध्यमापन्नो दक्षिणाचार उच्यते ।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भेद हैं उसी प्रकार वामाचार में आठ भेद तान्त्रिक गण से माने गये हैं। इस आचार में साधक के सात अधिकार माने गये हैं सो क्रमशः उन्नति करता हुआ साधक श्रीगुरुदेव की कृपा से प्राप्त करता है। महाभिषेक में साधक पूर्णता को प्राप्त करता है एवं विधि निषेध रहित होकर जीवन्मुक्ति को लाभ कर लेता है, और श्रीगुरुकृपा प्राप्त करके तत्स्वरूप हो जाता है। इस आचार में पञ्चतत्त्वों की प्रधानता है। पञ्चतत्त्व शक्तिमय समझे जाते हैं। अन्य आचारों में सब ब्रह्ममय समझा जाता है, परन्तु इस आचार में सब शक्तिमय समझा जाता है। और शक्ति की सहायता से ही परम-पद-प्राप्ति इस आचार का चरम

वामाचारे तथा चाष्टौ भेदाः प्रोक्ता हि तान्त्रिकैः ॥
वामाचारेऽधिकाराः स्युः सप्त वै परिकीर्त्तिताः ।
प्राप्यन्ते साधकैस्ते हि गुरुदेवकृपावशात् ॥
महाभिषेके प्राप्नोति साधकः परिपूर्णताम् ।
शून्यो विधिनिषेधाभ्यां जीवन्मुक्तो भवेत्ततः ॥
तथा गुरुकृपां प्राप्य तत्सारूप्यं प्रपद्यते ।
प्राधान्यं चाऽत्र तत्त्वानां पञ्चानां हि विधीयते ॥
गीयन्ते पञ्चतत्त्वानि शक्तिरूपाणि निश्चितम् ।
अन्यत्र ब्रह्मरूपाणि तत्त्वानि कथितानि तु ॥
अत्र सर्वं शक्तिमयं तत्साहाय्यात्परं पदम् ।
प्राप्तुं यत्नः परो लक्ष्यः साधनस्याऽस्य कीर्त्तितः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

लक्ष्य कहागया है। मन, वायु,वीर्य, ये तीनों कारण, सूक्ष्म, एवं स्थूल,रूप से एकही हैं, और शक्तिरूप हैं। स्थूलशक्ति-जयपूर्वक शीघ्रही सूक्ष्मशक्ति जय करते हुए शक्ति की कृपा प्राप्ति करना इस साधन का मुख्य लक्ष्य है। शक्ति की स्थूल विभूति का पूजन, उन विभूतियों की कृपाप्राप्ति, पञ्चतत्त्व सेवन द्वारा उपासना में सफलताप्राप्ति, उर्ध्वरेतस्त्व-प्राप्ति द्वारा मनका जय करना, तन्मात्रावशीकार पूर्वक वृत्तिजय और प्रकृतिकृपा के लाभद्वारा स्वस्वरूपप्राप्ति इस साधन का अन्तिम लक्ष्य है।

(सात अधिकार)

(४३) जब गुरुदेव कृपाकरके शिष्यको देवता व

मनोवीर्यं तथा वायुः कारणस्थूलसूक्ष्मतः।
भवन्ति त्वेकरूपाणि शक्तिरूपाणि चैव हि॥
स्थूलशक्तिं विजित्याशु सूक्ष्मशक्तेः पराजयात्।
कृपालाभो हि शक्तेश्च मुख्यो लक्ष्योऽस्य कीर्तितः॥
शक्तेः स्थूलविभूतीनां पूजनात्तत्कृपावशात्।
सेवनात्पञ्चतत्त्वानां साफल्यं स्यादुपासने॥
ऊर्ध्वरेतस्त्वसंप्राप्त्या मनसो वै पराजयः।
तन्मात्राणां वशीकाराञ्जित्वा सर्वाश्च वृत्तिकाः।
स्वस्वरूपोपलब्धिर्हि लक्ष्यश्चास्यान्तिमं स्मृतम्॥
(४३) यदोपादिशते मन्त्रं शिष्यं कृत्वा दयां गुरुः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मन्त्र का उपदेश दें तो वह संस्कार दीक्षा कहाता है। तदनन्तर साधक को उपयुक्त समझकर जब गुरुदेव साधन के साथ गुरु लक्ष्ययुक्त योगक्रियाओं का उपदेश देना प्रारम्भ करते हैं और शिष्य को प्रतिज्ञाबद्ध करदिया करते हैं तो वह दूसरा उन्नत अधिकार महादीक्षा कहाता है। जिस गुरु-लक्ष्ययुक्त साधन-द्वारा साधक क्रमशः मन्त्रसिद्धि को प्राप्त करता है उसको पुरश्चरण कहते हैं। ग्रहणादि शुभकाल में जो साधारण रीति पर मन्त्रपुरश्चरण कियाजाता है वह क्रिया पुरश्चरण-शब्दवाच्य है। और विशेष क्रिया-साध्य, कालसाध्य और उपदेशसाध्य जो पुरश्चरण

स एव दीक्षासंस्कारो वर्णितो मुनिपुङ्गवैः ॥
ततस्तु साधकं योग्यं ज्ञात्वा प्रारभते गुरुः।
गुरुलक्ष्यसमायुक्ताः क्रिया योगस्य शोभनाः ॥
उपदेष्टुं निजं शिष्यं तदा नद्धं प्रतिज्ञया।
कथितेयं महादीक्षा तन्त्रशास्त्रविशारदैः ॥
गुरुलक्ष्यसमायुक्तसाधनेनेह साधकः।
येन क्रमेण संसिद्धिं मन्त्रस्याप्नोति शर्म्मदाम् ॥
तदेवाऽत्र महाधीभिः पुरश्चरणमीरितम्।
ग्रहणादिशुभे काले रीत्या सामान्यया किल ॥
क्रियते यो मन्त्रजपः तत्पुरश्चरणं मतम्।
क्रियाविशेषसंसाध्या कालसाध्योपदेशतः ॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

होता है उसको महापुरश्चरण कहते हैं। पुरश्चरण द्वारा सिद्धि लाभ करने से साधक उन्नत अधिकारों को प्राप्त होजाता है। जब गुरुदेव शिष्य को साधन सम्बन्धीय गुप्त रहस्यों के उपदेश देने के उपयोगी समझते हैं तो संस्कारों के प्रदानद्वारा गुरुदेव उस शिष्य को गुप्त रहस्यों के भेद बताकर आनन्द राज्य का अधिकारी किया करते हैं, उस विधि को अभिषेक कहते हैं। पञ्चदेवात्मक पञ्चसम्प्रदायों में इस अभिषेक के स्वतन्त्र स्वतन्त्र नाम सुनने में आते हैं। और जब श्रीगुरुदेव उन्नततम संस्कारद्वारा साधक को अपने समान करके अपने में मिलालेते हैं उसको महाभिषेक कहते हैं। किन्हीं किन्हीं तन्त्रों में उसको पूर्णाभिषेक भी कहा करते हैं। आध्यात्मिक उन्नति द्वारा जब उपासक सर्व्व-उच्च अवस्था को प्राप्त करके

साध्या च या पुरश्चर्य्या सा महादिः प्रकीर्तिता।
लब्ध्वा सिद्धिं पुरश्चर्य्याद्वारा साधक उन्नतः॥
अधिकारी यदा जातः सद्गुरोः कृपया तदा।
योग्यं ज्ञात्वाऽऽनन्दराज्ये रहस्यमनुशास्ति तम्॥
एषोऽभिषेको विद्वद्भिस्तान्त्रिकैः परिकीर्तितः।
पञ्चदेवात्मकाः पञ्च सम्प्रदायाः श्रुताः श्रुतौ॥
श्रूयन्तेऽस्यैव नामानि तेषु नूनं पृथक् पृथक्।
अत्युन्नतैस्तु संस्कारैः संस्कृतं साधकं गुरुः॥
स्वस्मिन्यदा मेलयति स महादिः प्रकीर्तितः।
आध्यात्मिकोन्नतिद्वारोच्चावस्थां प्राप्य साधकः॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नामरूप की ऐक्यता प्राप्त करने को समर्थ होने लगता है उसी सर्व्वोत्तम अधिकार को तद्भाव कहते हैं। इस भावद्वारा साधक की अपने इष्टदेव के साथ ऐक्यता स्थापन होने लगती है एवं इसी अवस्था से महाभाव की प्राप्ति हुआ करती है।

धारणावर्णन।

(४४) बाह्य और आभ्यन्तर भेद से धारणा दो प्रकार की होती है। मन्त्रयोग में धारणा परम सहायक है। बहिः पदार्थों में मन के योग से बहिर्धारणा का साधन और सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर्जगत् के विषयों में मन के योग से अन्तर्धारणा का साधन होता है। धारणा की सिद्धि श्रद्धा और योगमूलक है।

नामरूपैकताज्ञाने सामर्थ्यं लभते बहु।
सर्व्वोत्तमाधिकारोऽयं बुधैस्तद्भाव ईर्यते॥
साधकोऽनेन भावेन स्वेष्टदेवैकतां दृढाम्।
संस्थाप्याऽन्ते महाभावं लभते ब्रह्मविन्मतम्॥
(४४) बाह्याऽऽभ्यन्तरभेदेन धारणा द्विविधा मता।
सहायतां प्रकुरुते मन्त्रयोगे हि धारणा॥
बाह्यवस्तुमनोयोगाद् बाह्या भवति धारणा।
अन्तर्जगत्सूक्ष्मद्रव्ये मनोयोगान्मताऽपरा।
श्रद्धायोगसमभ्यासात्स्फुटं सिध्यति धारणा॥

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

(धारणाऽधिकारवर्णन)

(४५) धारणा में सिद्धि प्राप्त करने से योगी मन्त्रसिद्धि और ध्यानसिद्धि प्राप्त करसक्ता है। भक्ति, आचार, प्राणसंयम, जपसिद्धि, देवता-सान्निध्यता, दिव्यदेशादि में दैवी शक्ति का आविर्भाव और इष्टरूप-दर्शन यह सब धारणासिद्धि से ही प्राप्त होते हैं। धारणासिद्धि की अनेक स्थूल और सूक्ष्म क्रियाएँ हैं सो योगमर्मज्ञ श्रीगुरुदेव के द्वारा यथाविधि प्राप्त करने योग्य हैं।

(मन्त्रों के दश संस्कार)

(४६) जनन, जीवन, ताडन, बोधन, अभिषेक, विमलीकरण, आप्यायन, तर्पण, दीपन और गुप्ति इन दशविध संस्कार द्वारा मन्त्र की सिद्धि हुआ क-

---

(४५) धारणासिद्धिमासाद्य सिद्धिं वै ध्यानमन्त्रयोः।
प्राप्नोति साधको नित्यं मन्त्रयोगपरायणः॥
भक्तिर्जपस्य संसिद्धिराचारः प्राणसंयमः।
साक्षात्कारो देवताया दिव्यदेशेषु नित्यशः॥
देवशक्तिविकाशो वै हीष्टदर्शनमेव च।
लभ्यन्ते धारणासिद्ध्या सर्वाणीति विनिश्चयः॥
स्थूलसूक्ष्मक्रिया या वै धारणासिद्धिलब्धये।
विज्ञेया योगमर्मज्ञाद् गुरुदेवाद्यथाविधिं॥
(४६) जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा।
अथाऽभिषेको विमलीकरणाऽऽप्यायने पुनः॥
तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्रसंस्क्रियाः।

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रती है। मातृका यन्त्र द्वारा मन्त्रवर्णों के उद्धार का "जनन" कहते हैं। मातृका यन्त्र केसर, चन्दन, अथवा भस्मद्वारा सुवर्णादि पात्र पर अङ्कित किया जाता है। केसर द्वारा शक्ति उपासना में, चन्दनद्वारा विष्णु उपासना में और भस्म द्वारा शिव उपासना में यन्त्र अङ्कित करना उपयोगी हुआ करता है। एक अष्टदल पद्म पूर्वोक्त विधि से अङ्कित करके उन अष्टदलों में अष्टवर्ग स्वतन्त्र रूप से पूर्वादि क्रम से लिखे जावें। पद्म के बाहर की ओर चतुर्द्वार और चतुष्कोण अङ्कित करते हुए पद्म को वेष्टन करदिया जाय। यन्त्र के चारों ओर के चार कोनों पर ठं मन्त्र और चारों द्वार पर बं मन्त्र लिखा जाय। व्योम अर्थात् हकार, इन्दु अर्थात् लकार, औकार, रसनार्ण अर्थात् विसर्ग; इन सब वर्णों

मन्त्राणां मातृकायन्त्रादुद्धारो जननं स्मृतम् ॥
स्वर्णादिपात्रे संलेख्य मातृकायन्त्रमुत्तमम् ।
कश्मीरचन्दनेनाऽपि भस्मना वाऽथ सुव्रते ॥
काश्मीरं शक्तिसञ्चारे चन्दनं वैष्णवे मनौ ।
शैवे भस्म समाख्यातं मातृकायन्त्रलेखने ॥
यन्त्रोष्टदलपद्मो हि कार्यः पूर्वं यथाविधि ।
कादिमान्ताः पञ्चवर्गा दिक्षु पूर्वादितो न्यसेत् ॥
यादिवान्ताः शादिहान्ता लक्ष्मीशे प्रविन्यसेत् ॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं दिक्षु वं ठं विदिक्षु च ॥
(अपिच) व्योमेन्दौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केसरम् ।

IGNCA
Acc. No.
Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Kirtikant Sharma Collection, Najafgarh

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Krishnakant Sharma Collection, Nalagarh